राजस्थान लोक सेवा आयोग
सामान्य अध्ययन
प्रश्न पत्र - 1
इकाई (Unit) - 3
खण्ड (Part) - ब (प्रबंधन)
टॉपिक - A

''प्रबंधन और निर्णय लेना''

पाठ्यक्रम

प्रबंधन -क्षेत्र, अवधारणा,

प्रबंधन के कार्य-योजना, आयोजन, स्टाफ, निर्देशन, समन्वय और नियंत्रण,

निर्णय लेना : अवधारणा, प्रक्रिया और तकनीक।

प्रबंध

प्रबन्ध का इतिहास उतना ही पुराना है, जितनी की मानव सभ्यता क्योकि स्वयं मानव सभ्यता के विकास में कही न कही और किसी न किसी रूप मे प्रबन्ध का भी योगदान रहा है। इस प्रकार प्रबन्ध की अवधारणा मानवीय सभ्यता के साथ विकसित होती चली गयी जो आज आधुनिक प्रबन्ध के नाम से जानी जाती है। और वास्तव मे आज 'प्रबन्ध' ही व्यवसाय तथा उद्योग रूपी शरीर का मस्तिष्क अथवा उसकी जीवनदायी शक्ति है। यही वह जीवनवटी है जो संगठन को शक्ति देती है, संचालित करती है और नियंत्रण मे रखती है। अत: 'प्रबन्ध' आधुनिक व्यवस्थाओं, संगठनों को अपने लक्ष्य प्राप्ति की एक युक्ति है जिसके कुशल संचालन पर ही व्यवसाय की सफलता निर्भर करती है। इसलिए पीटर ड्रकर कहते है कि ''प्रबन्ध ही प्रत्येक व्यापार का गतिशील एवं जीवनदायक तत्व होता है, उसके नेतृत्व के अभाव मे उत्पादन के साधन केवल, 'साधन' मात्रा रह जाते है, कभी उत्पादक नही बन पाते।''

प्रबन्ध से तात्पर्य है कि कोई भी कार्य, कुशलता व मितव्ययिता पूर्वक कैसे किया जाये। वर्तमान जटिल व्यावसायिक युग में प्रबन्ध को अनेक अर्थो में प्रयुक्त किया जाता है। वास्तव मे प्रबन्ध दूसरो से काम लेने की एक युक्ति है। किसी उपक्रम मे श्रमिक कार्य करते है, इसमें प्रबन्ध को यह सोचना पड़ता है कि किस प्रकार श्रमिको से अच्छे ढंग से काम लिया जा सकता है। प्रबन्ध को यह निर्णय लेना पड़ता है कि वास्तव मे क्या करना है और उसको करने का उत्तम तरीका क्या है कुछ व्यक्तियों ने इसे संकीर्ण अर्थ मे लिया है। जबकि बहुमान्य धारणा व्यापक अर्थ के पक्ष में है। संकीर्ण अर्थ में प्रबन्ध दूसरे व्यक्तियों से कार्य कराने की युक्ति है और वह व्यक्ति जो दूसरे व्यक्ति से कार्य करा सकता है, प्रबन्ध कहलाता है। विस्तृत अर्थ में प्रबन्ध कला और विज्ञान दोनों है और यह निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न मानवीय प्रयासों से सम्बंध रखता है। जबकि थियों हेमेन ने प्रबंध को तीन अर्थो यथा प्रबन्ध अधिकारियों के अर्थ में, प्रबन्ध विज्ञान के अर्थ में एवं, प्रबन्ध प्रक्रिया के अर्थ में प्रयुक्त किया है।

''प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार प्रबन्ध का अभिप्राय सामान्यत: प्रबन्ध अधिकारियों से होता है। जिसके अंतर्गत संबंधित इकाई मे कार्य करने वाले लोगों के कार्यो पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है। द्वितीय दृष्टिकोण के अनुसार **प्रबन्ध का अभिप्राय: एक ऐसे विज्ञान से है जिसमें व्यवसायिक नियोजन संगठन, संचालन, समन्वय, प्रेरणा, नियंत्रण आदि से संबंधित सिद्धांतों का वैज्ञानिक विश्लेषण होता है।** तृतीय दृष्टिकोण के अनुसार प्रबन्ध का आशय एक प्रक्रिया से है। जिसके अंतर्गत दूसरे लोगों के साथ मिल-जुलकर कार्य किया जाता है।''

किम्बॉल एवं किम्बॉल- के शब्दों में, ''व्यापक रूप में प्रबन्ध का आशय उस कला से है। जिसके द्वारा किसी उद्योग मे मानव और माल को नियंत्रित करने के लिए अधिक सिद्धांतों को व्यवहार मे लाया जाता है।''

जेम्स एवं लुण्डी के अनुसार- ''प्रबन्ध मुख्य रूप से विशिष्ट उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए दूसरों के प्रयत्नों को नियोजित, समन्वित, प्रेरित तथा नियंत्रित करने का कार्य है।''

हेनरी फेयोल के अनुसार- ''प्रबन्ध को एक प्रक्रिया मानते हुए कहते है कि प्रबन्ध से आशय पूर्वानुमान लगाना, योजना बनाना, संगठन करना, आदेश देना, समन्वय करना व नियंत्रण स्थापित करना आदि है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि **प्रबन्ध का आशय उस कला से है जिसके द्वारा प्रशासन द्वारा निर्धारित नीतियों को कार्यान्वित किया जाता है तथा सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मानवीय क्रियाओं का निर्देशन, संचालन, नेतृत्व तथा नियंत्रण किया जाता है।**

प्रबन्ध की प्रकृति

प्रबंध एक कला है

अध्ययन व अनुभव से प्राप्त ज्ञान या चातुर्य के उपयोग से कार्यो को करना ही कला है। प्रबंध कार्य में प्रबंधकीय ज्ञान, अध्ययन, अनुभव एवं चातुर्य का उपयोग किया जाता है। इनके व्यावहारिक उपयोग से संस्था के उद्देश्यों को अधिकांश सफलता के साथ किया जा सकता है। प्रबंधकीय ज्ञान का शिक्षण एवं प्रशिक्षण दिया जा सकता है, किन्तु प्रबंध मे सफलता तथा असफलता प्रत्येक व्यक्ति के चातुर्य, ज्ञान एवं अनुभव से प्राप्त होती है।

प्रबंध एक विज्ञान है

विज्ञान ज्ञान की किसी भी शाखा का क्रमबद्ध अध्ययन है जिसमें कारण एवं परिणाम का संबंध पाया जाता है। जहां तक प्रबंध का प्रश्न है प्रबंध शुद्ध विज्ञान की श्रेणी में नहीं आता है। यह व्यावहारिक विज्ञान की श्रेणी में आता है। प्रबंध विज्ञान एक ऐसी विज्ञान है जिसके सिद्धांत वातावरण की परिस्थितियों तथा स्वयं प्रबंधकों के विचारों से प्रभावित होते है। प्रबंध कभी भी शुद्ध विज्ञान निम्नलिखित कारणों से नहीं बन सकता है-

- सिद्धांतों की सार्वभौतिकता का अभाव।
- सर्वमान्य मान्यताओं का अभाव।
- अचूक माप का अभाव।

प्रबन्ध एक पेशा है

पेशे की विशेषता होती है कि इसके लिए एक प्रकार के विशिष्ट ज्ञान की उपलब्धि आवश्यक है। प्रबंध एक विशिष्ट विज्ञान है, उसकी एक तकनीक है, उसका एक तन्त्र है। इस विशिष्ट विज्ञान की जानकारी और गहन अध्ययन के बिना कोई व्यक्ति प्रबंधक नही बन सकता। अत: आज का प्रबंध निश्चित रूप से एक पेशा है।

प्रबन्ध मानवीय तथा भौतिक साधनों मे समन्वय स्थापित करता है

कुशल प्रबन्धक मानव मशीन तथा अन्य साधनों को समन्वित कर एक प्रभावपूर्ण उपक्रम को जन्म देता है। तथा उनकी उत्पादकता में वृद्धि करता है कास्ट एवं रोजेविंग के अनुसार प्रबन्धकों की आवश्यकता मनुष्य, मशीन, माल, धन, समय और स्थान के असंगठित संसाधनों को एक उपयोगी तथा प्रभावापूर्ण उद्यम मे बदलने के लिए पड़ती है।

प्रबन्ध एक सार्वभौमिक क्रिया है

प्रबन्ध एक सार्वभौमिक क्रिया है, जो प्रत्येक संस्था मे चाहे वह सामाजिक संस्था हो अथवा धार्मिक या राजनीतिक हो अथवा व्यावसायिक समान रूप से सम्पन्न की जाती है। प्रबन्ध के सिद्धांत समान रूप से किसी मंदिर, क्लब, श्रमसंघ, स्थानीय संस्था आदि पर लागू होते है।

प्रबन्ध की विषय वस्तु मनुष्य है

प्रबन्ध एक सामाजिक प्रक्रिया है, क्योकि प्रबन्ध के कार्य मौलिक रूप से मानवीय क्रियाओं से संबधित है प्रबन्ध के द्वारा ही मानव क्रियाओं, नियोजित, संगठित, निर्देशित, समन्वित, प्रेरित तथा नियन्त्रित किया जाता है। चूंकि प्रबन्ध की विषय वस्तु मनुष्य है। अत: इसके सिद्धांत निश्चित एवं अकाट्य नही बन सकते। प्रबन्ध के सिद्धांत मूल रूप से व्यावहारिक सिद्धांत हो और मनुष्य के स्वभाव के अनुसार बदलते रहते है।

प्रबन्ध के कुछ सामाजिक दायित्व भी है

अपने महत्व के कारण प्रबन्ध आज समाज का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। आज प्रबन्ध के कुछ सामाजिक दायित्व भी पैदा हो गये है और प्रबन्धक इनकी अवहेलना नही कर सकता। यह कहा जाने लगा है कि प्रबन्ध केवल नियोक्त का प्रतिनिधि नही अपितु सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधि है। प्रबन्ध के ग्राहकों कर्मचारियों, पूर्तिकर्ताओं, नियोक्ता, सरकार तथा समाज के प्रति अनेक उत्तरदायित्व होते है।

अन्य

- प्रबन्ध संगठनात्मक पदसोपान के समस्त स्तरों पर पाया जाता है।
- प्रबन्ध मे पूर्व निर्धारित उद्देश्यो की समय पर प्राप्ति अनिवार्य है।
- प्रबन्ध की प्रकृति समग्रतावादी होती है अर्थात वह समस्त उपव्यस्थाओं पर ध्यान केन्द्रित करता है, किसी एक 'सेक्टर' पर नही।

प्रबन्ध का महत्व

आधुनिक युग में प्रबन्ध का अत्यधिक महत्व है। अच्छे प्रबन्ध के अभाव में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त नही किया जा सकता, समाज का आर्थिक कल्याण कुशल प्रबन्ध पर ही निर्भर है, यह उद्योग रूपी शरीर का मस्तिष्क एवं प्राण है जिसके बिना उद्योग का संचालन असंभव है तथा प्रबन्ध संगठन की क्रियात्मक शक्ति है। अत: व्यावसायिक क्षेत्र में सुप्रबन्ध का न होना बालू मे मकान बनाने के समान है। इसके महत्व को निम्नलिखित तीन वर्गो मे बांटा गया है-

- व्यावसायिक संस्थाओं के लिए महत्व।
- समाज के लिए महत्व।
- राष्ट्र के लिए महत्व।

व्यावसायिक संस्थाओं के लिए महत्व

प्रबंध प्रत्येक व्यवसाय का गतिशील जीवनदायी अंग है। उसकी भूमिका तथा महत्व को नीचे के कुछ शीर्षकों मे स्पष्ट करने का प्रयास करते है।

- उद्देश्यों एवं प्राथमिकताओं का निर्धारण।
- संस्था की सफलता तथा लक्ष्यों की प्राप्ति।
- प्रतिस्पर्द्धा पर विजय।
- मानवीय संसाधनों का विकास।
- संकटों का निवारण।
- संस्था की ख्याति।
- साधनों का अनुकूलतम उपयोग।
- जटिल व्यावसायिक समस्याओं का समाधान।
- प्रभावकारी संगठन संरचना का निर्माण।
- नवीन तकनीकों तथा प्रचलित विधियों मे समन्वय।
- सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह।
- सुदृढ़ औद्योगिक संबंधों की स्थापना- 'सुदृढ़ औद्योगिक संबंध संस्था की सफलता की आधारशिला है।
- उत्पादकता मे अभिवृद्धि- बिआर्स से अनुसार, 'उत्पादकता पर सर्वाधिक प्रभाव डालने वाला एक तत्व दक्ष या कुशल प्रबंध ही है।
- परिवर्तनों का प्रेरक एवं माध्यम-संक्षेप मे कुशल प्रबंध सदैव ही समयानुकूल परिवर्तन करत है तथा परिवर्तनों की प्रेरणा देता है।

समाज के लिए महत्व

हमारे समाज के मानवीय विकास में प्रबंध की क्रांतिकारी भूमिका है। यह मानवीय एवं भौतिक संसाधनों के कारगर उपयोग से जीवन-स्तर में सुधार करने की हमारे युग की महान चुनौती को समझ सकता है इसके महत्व को निम्नलिखित कुछ शीर्षकों मे स्पष्ट करने का प्रयास करते है-

- समान के विभिन्न वर्गो के हितों मे सामंजस्य।
- रोजगार की उपलब्धि।
- सामाजिक उत्थान में योगदान।
- वस्तुओं तथा सेवाओं की उपलब्धि।
- सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा।
- जीवन-स्तर में सुधार-प्रबंध का उद्देश्य जनता के जीवन को ऊँचा करते हुए सम्पूर्ण समाज के जीवन की किस्म को सम्पन्न बनाना है।

राष्ट्र के लिए महत्व

कुशल प्रबंध का राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे योगदान का हम निम्न कुछ शीर्षकों के अंतर्गत अध्ययन कर सकते है-

- भौतिक संसाधनों का सदुपयोग।
- पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन।
- संतुलित आर्थिक विकास।
- देश की समृद्धि।
- मानव संसाधनो का दुरूपयोग।
- राष्ट्रीय योजनाओं मे योगदान।
- गरीबी का उन्मूलन।

अतः संक्षेप में प्रबन्ध के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से भी स्पष्ट कर सकते है-

- **न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन**- आधुनिक प्रबन्ध की प्रणालियों के अध्ययन द्वारा हमें यह मालूम हो जाता है कि मानव, मशीन एवं माल मे कैसे उचित समन्वय स्थापित किया जाये जिससे न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन किया जा सके।
- **औद्योगिक विकास की गति में तीव्रता**- उद्योगों की उत्पादन क्षमता तथा साधनों का पूर्ण उपयोग करने, उत्पादन लागत घटाने, वस्तुओं की किस्म में सुधार करने, अंततः औद्योगिक विकास की गति मे वृद्धि करने के सन्दर्भ में कुशल व्यावसायिक संगठन महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।
- **आर्थिक योजना की सफलता**- कुशल प्रबन्ध के द्वारा आर्थिक विकास की योजनाओं को सफल बनाया जा सकता है। वास्तव मे आर्थिक नियोजन की सफलता बहुत कुछ कुशल प्रबन्ध पर निर्भर करती है।
- **बेरोजगारी की समस्या का समाधान**- बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने मे भी कुशल प्रबन्ध से काफी मदद मिलती है। देश मे जो नवीन उद्योग धंधे खुले है। उनका संचालन कुशल प्रबन्धको द्वारा ही किया जाता है।
- **संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति**- किसी भी नवीन उपक्रम की स्थापना कुछ निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जाती है। कुशल प्रबन्धकों का संस्था के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में विशेष महत्व होता है।
- **व्यक्तियों की योग्यता का विकास**- प्रबन्ध दूसरों से काम कराने की एक कला है। प्रबन्ध से एक तरफ व्यक्तियों की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है दूसरी तरफ उनके मनोबल मे भी वृद्धि की जाती है। इस प्रकार प्रबन्ध के कारण व्यक्तियों की योग्यता का विकास होता है।
- **सामाजिक जीवन स्तर मे सुधार**- अच्छा एवं कुशल प्रबन्ध रोजगार के साधनों मे वृद्धि करके प्रति व्यक्ति आय तथा उत्पादन बढ़ाने मे सहायता प्रदान करता है। इससे सामाजिक जीवन स्तर में सुधार होता है।
- **गलाकाट प्रतियोगिता का सफलता से सामना**- आज के युग में बाजार के विस्तार के साथ-साथ प्रतिस्पर्धा भी बढ़ती जा रही है। इस गलाकाट प्रतिस्पर्धा का सफलता से सामना वही उत्पादक कर सकता है जिसके उत्पादों की लागत कम से कम होने के साथ किस्म भी अच्छी हो। प्रशासन एवं प्रबन्ध विज्ञान के सिद्धांतों का प्रयोग कर लागत मे काफी कमी लायी जा सकती है।
- **नवीन परिवर्तनों को उपक्रमों मे लागू करना**- समय के साथ-साथ व्यावसायिक एवं औद्योगिक जगत में अनेक नवीन परिवर्तन हो रहे है। इस नवीन परिवर्तनों को संस्था में लागू करना बहुत जरूरी होता है। यह कार्य कुशल प्रबन्धकों द्वारा किया जाता है।
- **श्रम समस्याओं का समाधान करना**- श्रम की कुशलता मे वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि उसकी समस्याओं का संतोषजनक ढंग से समाधान किया जाये तथा श्रम-पूंजी के अंतर को पाटा जाये। यह कार्य कुशल प्रबन्धक ही कर सकते है।
- **वस्तुओं एवं सेवाओं के विक्रय की आधुनिक पद्धतियों का विकास**- प्रशासन एवं प्रबन्ध विज्ञान हमें यह भी बताता है कि शहरों एवं गांवो के अन्तिम उपभोक्ताओं के वस्तुएं किस पद्धति से बेची जा सकती है। आजकल वस्तुएं बेचने के लिए विक्रय की अनेक आधुनिक रीतियों का प्रयोग किया जाता है।
- **सामाजिक उत्तरदायित्वो को पूरा करना**- प्रबन्धकों को व्यवसाय की स्थापना करने, उसके संचालन करने के अलावा अनेक सामाजिक उत्तरदायित्वों को भी पूरा करना पड़ता है। इस दृष्टि से भी प्रबन्ध का काफी महत्व है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'प्रबन्ध' की अवधारणा एक शाश्वत चलने वाली, प्रगतिशील तथा बहुआयामी अवधारणा है, जो संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति, संगठनात्मक विकास और उसे परिस्थितियों के अनुरूप ढालते हुए अधिकतम मानव कल्याण के लिए प्रयासरत रहती है। आज के आधुनिक और अल्याणकारी युग में प्रबन्ध प्रत्येक देश की अनिवार्य आवयकता बन चुका है। यह विकास का पर्याप्त और संगठन की सफलता का 'सिम्बोल' बन गया है। हालांकि प्रबन्ध सिद्धांतों में सार्वभौतिकता का अभाव, प्रबन्ध के सिद्धांतों व नियमों का स्थायी न होना और मानवीय आचरण में परिवर्तनों को समझने और उससे अनुकूलन करने में अक्षमता को लेकर आलोचना भी की जाती है। लेकिन ये कमियां ऐसी नही है जिससे प्रबन्ध का महत्व कम हो जाये, क्योकि प्रबन्ध की विशेषताओं का देखकर ही इसकी भूमिका स्पष्ट हो जाती है। यह बढ़ती हुई प्रतियागिता से मुकाबला करने में, उत्पादन के साधनों के प्रभावपूर्ण उपयोग करने में, उत्पादन के साधनों मे समन्वय करने में न्यूनतम लागत पर अधिकतम और श्रेष्ठतम उत्पादन करने मे तथा भविष्य के लिए सक्षम प्रबन्धक उपलब्ध कराने में अपना अमूल्य और बहुमुखीय योगदान देता है। अतः सफल प्रबन्ध के लिए उपयुक्त और श्रेष्ठ तकनीक अपनाते हुए उसे सर्वोत्तम परिणामोन्मुखी और अधिकतम मानवोन्मुखी बनाये जाने के प्रयत्न किये जाने चाहिए।

प्रबन्ध की विशेषताए

1. **प्रबन्ध सर्वमान्य/सार्वभौमिक है :** इसका अर्थ है कि प्रबन्ध की आवश्यकता सभी प्रकार के संगठनों में होती है चाहे वे व्यावसायिक संगठन हों या सामाजिक अथवा राजनीतिक, छोटे हों या बड़े। प्रबन्ध की आवश्यकता विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, अस्पताल, बड़े संगठनों जैसे कि रिलाइन्स इन्डस्ट्रीज लिमिटेड या फिर आपके इलाके की छोटी-सी पंसारी की दुकान में भी होती है। अत: यह एक सार्वभौमिक क्रिया है जो कि सभी संगठनों में समान आवश्यक तत्व के रूप में है।
2. **प्रबन्ध उद्देश्यपूर्ण है :** प्रत्येक संगठन की स्थापना कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए की जाती है। उदाहरण के लिए, एक व्यावसायिक संगठन का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभोपार्जन एवं/या उत्तम स्तर की वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन हो सकता है। संगठन का प्रबंध सदैव संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति पर केन्द्रित होता है। प्रबंध की सफलता इन उद्देश्यों की प्राप्ति से ही आंकी जाती है।
3. **प्रबन्ध एक सतत् प्रक्रिया है :** प्रबन्ध लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। जब तक संगठन रहता है, प्रबंध की प्रक्रिया सतत् रूप से चलती रहती है। प्रबन्ध के बिना संगठन का कोई कार्य नहीं हो सकता। उत्पादन, बिक्री, संग्रहण इत्यादि क्रियाएँ सभी के लिए प्रबन्ध आवश्यक है। जब तक ये प्रक्रियाएं चलती हैं, प्रबन्ध की आवश्यकता बनी रहती है।
4. **प्रबन्ध एक परस्पर जोड़ने वाली प्रक्रिया है :** सभी कार्य, क्रियाएं एवं प्रक्रियाएं परस्परमिश्रित हैं। प्रबंधा का कार्य है उन्हें एकत्रित कर समन्वय द्वारा इच्छित उद्देश्यों की पूर्ति करना। मनुष्यों, मशीनों एवं समूह के रूप में वैयक्तिक प्रयासों के समन्वय के अभाव में संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति करना असंभव कार्य होगा।
5. **प्रबन्ध अमूर्त है :** प्रबन्धा न तो वह स्थान है जहाँ बोर्ड की मीटिंग दिखाई जा रही है और न ही वह स्थान जहां प्रधानाचार्य को अपने कार्यालय में बैठे हुए दिखाया जा रहा है। प्रबंध एक ऐसी शक्ति है जिसे देखा नहीं जा सकता। उसकी उपस्थिति को केवल नियमों, उत्पाद, कार्य के वातावरण, आदि से महसूस किया जा सकता है।
6. **प्रबन्ध बहुआयामी है :** प्रबंध के लिए संगठन में बहुत प्रकार के क्षेत्रों का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि उसमें मनुष्य, मशीनों, माल के अतिरिक्त उत्पादन, वितरण, लेखा एवं अन्य कई कार्यों का समावेश है। इसलिए हम पाते हैं कि प्रबंध के सिद्धांत एवं तकनीक अध्ययन के बहुत-से क्षेत्रों जैसे कि इंजीनियरिंग, अर्थशास्त्र, समाज विज्ञान, मनोशास्त्र, मानव विज्ञान, गणित एवं संस्कृति, इत्यादि से लिए गए हैं।
7. **प्रबन्ध एक सामाजिक क्रिया है :** प्रबंधा का सबसे प्रमुख अंग है समूह में कार्य कर रहे लोगों से व्यवहार। इसमें सम्मिलित हैं कार्य पर लगे लोगों का विकास एवं अभिप्रेरण एवं एक सामाजिक इकाई के रूप में उनकी संतुष्टि का ध्यान रखना। प्रबन्ध के सभी कार्य मुख्यत: मानवीय संबंधों से जुड़े हैं इसलिए उसे सामाजिक क्रिया कहना उचितहै।
8. **प्रबन्ध परिस्थिति पर आधारित है :** प्रबन्धा में सफलता परिस्थिति पर निर्भर है। अत:परिस्थिति अनुसार सफलता के स्तर बदलते रहते हैं। प्रबंध का कोई एक निश्चित सर्वोत्तम तरीका नहीं है। प्रबंधा की तकनीक एवं उसके सिद्धांत सापेक्ष हैं और सभी परिस्थितियों में समान रूप से सही नहीं हैं।

प्रबन्ध के कार्य

मानव निपुणता एवं साधनों के उपयोग के लिए सामूहिक प्रयासों द्वारा अपेक्षित लक्ष्यों की कल्पना करने तथा उनको प्राप्त करने से संबंधित कार्य निष्पत्ति ही प्रबन्ध है। अर्थात प्रबंध एक विकासशील विज्ञान है, फलस्वरूप इसके कार्य बदलते रहते है। प्रबन्ध की कार्यात्मक अवधारणा के विचारकों ने इसकों प्रबन्ध करने, योजना बनाने, संगठन करने एवं नियोजित करने की समन्वित क्रिया के रूप में परिभाषित करते है। अत: संक्षेप मे प्रबन्ध अनेक कार्यो का सम्पादक करता है। इनमें कुछ मुख्य कार्य निम्नलिखित है-

नियोजन

नियोजन का आशय संस्था के उद्देश्यों, नीतियों एवं कार्यक्रमों को निश्चित करने और उनकी पूर्ति के लिए कार्यविधियों का चुनाव करने से है। बिना योजना बनाये कार्य प्रारम्भ करना अनिश्चितता तथा असफलताओ को न्योता देना होता है। किसी भी व्यवसाय में चाहे वह छोटा हो या बड़ा योजना बनाना आवश्यक है। प्रबन्धको के लिए व्यवसाय के संचालन की योजना बनाना उनके प्रबन्ध कार्यो का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। क्योकि इसी के आधार पर अन्य कार्य कुशलतापूर्वक पूरे किये जा सकते है।

संगठन

नियोजन के पश्चात प्रशासन द्वारा निर्धारित नीतियों को कार्यान्वित करके लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रबन्ध वर्ग संगठन की व्यवस्था करता है बिना स्वस्थ संगठन के योजनाओं को अच्छी तरह से कार्यान्वित नही किया जा सकता है। प्रबन्ध संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न क्रियाओं का निर्धारण एवं वर्गीकरण करके उन्हें करने हेतु योग्य अधिकारियों को सौंप देता है।

संचालन

प्रबन्ध मूलत: दूसरों से काम कराने की एक कला है। संगठन को क्रियाशील करने तथा निरंतर रखने के लिए कुशल संचालन अति आवश्यक होता है। संस्था के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रबन्ध संगठन मे कार्यरत प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक निर्देशन देता है। संचालन का उद्देश्य निर्देशन द्वारा समय, श्रम एवं पूँजी के अपव्यय को रोका जाना है।

समन्वय

किसी भी संस्था के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने तथा नीतियों को कर्यान्वित करने के लिए विभिन्न विभागों तथा विभिन्न कर्मचारियों के कार्यो में समन्वय होना चाहिए। ई.एफ.एल. ब्रेच के अनुसार, व्यावसायिक संस्था के विभिन्न सदस्यों के मध्य इस ढंग से कार्य का आवन्टन करना कि उनमें परस्पर सहयोग एवं सद्भावना बनी रहे, समन्वय कहलाता है। समन्वय प्रबन्ध कला का जार है। प्रबन्ध का कोई कार्य क्यो न हो, चाहे नियोजन हो, संगठन हो, नियुक्ति करना हो, आदेश देना हो, सभी में समन्वय की आवश्यकता होती है।

प्रेरणा या कार्य मे प्रवृत्त करना

किसी भी संख्या को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रबन्ध को कर्मचारियों मे मन में कार्य के प्रति रूचि उत्पन्न करके उसे बढ़ाने का कार्य करना पड़ता है। इसी को प्रेरणा कहा जाता है। प्रबन्ध का यह कार्य है कि वह श्रमिकों को उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा दे। वास्तव मे प्रेरणा के आधार पर ही किसी निर्धारित लक्ष्य तक पहुंचा जा सकता है। प्रेरणा के अंतर्गत कर्मचारियों के वैज्ञानिकों का चयन कार्य सिखाने, मैत्रीपूर्ण, सहयोगी एवं गतिशील वातावरण उत्पन्न करने तथा व्यक्ति को आत्मविकास के लिए प्रोत्साहन देने पर बल दिया जाता है।

नियंत्रण

मनुष्य से गलती होना स्वाभाविक है। किन्तु गलतियों को उचित नियंत्रण के माध्यम से न्यूनतम किया जा सकता है। नियंत्रण प्रबन्ध का अंतिम शस्त्र है। बिना नियंत्रण के प्रबंधक को यह पता नही चलता कि सारा संगठन किस दिशा मे जा रहा है। सरल शब्दों मे नियंत्रण का अर्थ है ऐसे उपाय करना जिससे संस्था के व्यवसाय को योजनाओं के अनुसार चलाया जा सके और यदि उसमें कही कोई अन्तर आ जाये तो सुधारात्मक कदम उठाकर उसे योजना की दिशा में मोड़ दिया जा सके।

निर्णय लेना

निर्णय लेना तथा नेतृत्व करना भी प्रबन्ध का कार्य है। ड्रकर ने इस संबंध मे कहा है कि प्रबन्धक जो कुछ करता है, वह निर्णय लेकर करता है। व्यवसाय की स्थापना से लेकर उसके समापन तक प्रबन्धकों को अनेक निर्णय लेने पड़ते है। सामान्यतया प्रबन्धक जो भी कार्य करते है, वह निर्णय पर आधारित रहते है। संख्या के उद्देश्यों को कुशलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए विभिन्न वैकल्पिक उपायों मे से सर्वोत्तम उपाय का चुनाव करना ही निर्णय लेना कहलाता है।

नव प्रवर्तन

आधुनिक प्रबन्ध विशेषज्ञ नवप्रवर्तन को भी प्रबन्ध का कार्य मानते है। नवीन विचारों का सृजन ही वास्तव मे नवप्रवर्तन है। प्रबन्ध के नवप्रवर्तन संबंधी कार्य पर ड्रकर ने सबसे अधिक जोर दिया है। प्रबन्धकों को संस्था के उद्देश्य प्राप्त करने तक ही अपने कर्तव्यों की समाप्ति नही समझना चाहिए। उन्हें संस्था के विकास तथा नवीन परिवर्तन लाने पर भी जोर देना चाहिए प्रबन्धक को समय के साथ-साथ कदम मिलाकर आगे बढ़ना चाहिए तथा उसे प्रगतिशील विचारों का होना चाहिए।

सन्देशवाहन

समाचारों का आदान-प्रदान ही संदशवाहन कहलाता है। संदेशवाहन को हम प्रबन्ध का सहायक कार्य कह सकते है। इसके माध्यम से ही प्रबन्ध अपने विचारों से अधीनस्थों को अवगत कराता है। उन्हें आदेश देता है, कार्य के आवंटन की सूचना देता है। संदेशवाहन प्रबन्ध को क्रियाशील रखता है।

कर्मचारियों की नियुक्ति

प्रबन्ध संस्था के विभिन्न पदो का उत्तरदायित्व सम्भालने के लिए विभिन्न अधिकारियों के चुनाव एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है। ताकि निश्चित योजनाओं को क्रियान्वित किया जा सके। योग्य, कुशल एवं प्रशिक्षित कर्मचारियों के बिना किसी संख्या का प्रबन्ध निष्क्रिय हो जाता है।

निर्देशन

सफल कर्यान्वयन के लिए श्रमिकों को समय-समय पर आदेश-निर्देश व मार्गदर्शन देना भी प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि प्रबन्ध दूसरों से कार्य कराने की कला है, जिसे निश्चित सीमा रेखा में बांध पाना संभव नही है, क्योकि प्रबन्ध एक ऐसा नवीन तथा विकासशील विज्ञान है, जिसके कुछ कार्यो को निश्चित कर दिया गया है तथा कुछ कार्य विकास की गति मे है तथा कुछ कार्यो का निर्धारण भविष्य की परिस्थितियो पर रहेगा। अत: प्रबन्ध के कार्यो को भी बदलती हुई परिस्थितियों के संदर्भ मे ही परिभाषित करना समीचीन होगा।

प्रबन्ध की पोस्डकॉर्ब तकनीक

वर्तमान युग प्रबन्ध आधारित है। बिना सुनियोजित प्रबन्ध के कोई भी संगठन न तो अपने संसाधनों का उपयोग कर पाता है ओर न ही अपने उद्देश्यों की प्राप्ति। अत: प्रबन्ध अनिवार्य है लेकिन 'प्रबन्ध' के अंतर्गत कौन-कौन से कार्यो को सम्मिलित किया जाये, इस पर विद्वानो मे मतैक्य नही है, क्योकि विभिन्न विद्वानो द्वारा प्रबन्ध के भिन्न-भिन्न कार्य बतलाये गये है। इन सभी में अत्याधिक चर्चित एवं मान्य दृष्टिकोण लूथर गुलिक द्वारा प्रतिपादित 'POSDCORB' शब्दावली है। अर्थात प्रबन्धकीय कार्यो को व्यवस्थित एवं पूर्णता प्रदान करने के लिए लूथर गुलिक ने समस्त प्रबन्धकीय कार्यो/प्रक्रियाओं को 'पोस्डकॉर्ब' मे समायोजित करने की चेष्टा की है, जो अत्यधिक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

'POSDCORB' शब्द अंग्रेजी के सात अक्षरों के मेल से निर्मित किया गया जो सात शब्दों के प्रथम अक्षर के द्योतक है। जो संक्षेप मे नियोजन, संगठन, कार्मिक, निर्देशन, समन्वय, प्रतिवेदन तथा बजट कार्यो को क्रियात्मक रूप में वर्णित करता है। वस्तुत: पोस्डकॉर्ब किसी कार्यपालन अधिकारी/प्रबन्धक द्वारा किए जाने वाले कार्यो को बताता है। इनकी व्याख्या निम्न प्रकार है-

P-Plannig (योजना बनाना)-प्रत्येक संगठन में कार्यकुशलता रखने के लिए संसाधनों का समुचित उपयोग आवश्यक है। अत: इस हेतु समयानुरूप योजना की रूप रेखा, निर्माण तथा कार्यनीति का निर्धारण करना ही नियोजन है।

O-Organisin (संगठित करना)-इसका तात्पर्य संगठन निर्माण नही बल्कि उद्देश्यनुरूप कार्यो तथा प्रक्रियाओं का व्यवस्थिकरण है जिससे कि समस्त मानवीय एवं भौतिक संसाधनों को उपयोग मे लाया जा सके।

S-Staffing (कार्मिकों की व्यवस्था करना)-

सांगठनिक, आवश्यकतानुरूप कार्मियों की भर्ती, प्रशिक्षण, वर्गीकरण, वेतन, पदोन्नति स्थानांतरण आदि कार्य इसमें आते है।

D-Directing (निर्देश देना)-

प्रक्रिया के व्यवस्थित संचालन हेतु उच्च अधिकारी द्वारा समय-समय पर अधीनस्थ को निर्देशित किया जाता है।

C-Co-ordination (समन्वय करना)-

सांगठनिक एक रूपता को बनाये रखने तथा कार्यो मे जटिलता, बिखराव, अतिराव तथा इनसे आने वाली समस्याओं को रोकने हेतु या कम करने हेतु समन्वय आवश्यक है।

R-Reporting (प्रतिवेदन देना)-

उच्च एवं अधीनस्थों के मध्य समन्वय बनाये रखने तथा संगठन को प्रगति शील बनाये रखने हेतु निम्न से शीर्ष की ओर प्रतिवेदन प्रेषित करना आवश्यक है।

B-Budgeting (बजट बनाना)-

समस्त प्रबंधकीय प्रक्रियाओं का संचालन वित्त पर निर्भर करता है अत: बजट निर्माण द्वारा आय-व्यय का आंकलन करना आवश्यकह है।

अत: गुलिक द्वारा दर्शायी गयी इन प्रबंधकीय प्रक्रियाओं का उपयोग सभी प्रकार के संगठन मे देखा जा सकता है। किन्तु इन का अनिवार्यत: होना ही आवश्यक नही है बल्कि ये तो प्रबन्धन का विश्लेषण मात्र है।

आलोचना- POSDCORB दृष्टिकोण की सर्वस्वी-कार्यता के बावजूद इसकी कुछ सीमाएं भी है, जो निम्न प्रकार है-

- प्रबन्ध के समस्त आयामों को पूरा नही करता क्योकि इसमे नीति निर्माण, कानून निर्माण, निर्णयन, जनसम्पर्क जैसी प्रमुख प्रक्रियाओं का वर्णन नही है।
- प्रबन्धन की पोस्डकॉर्ब प्रक्रियाएं सभी प्रकार के समूहों जैसे परिवार, दुकान, मित्रसमूह आदि में देखी जा सकती है। अत: यह विशिष्ट तकनीक नही कही जा सकती बल्कि एक सामान्य अवधारणा मात्र है।
- प्रबंधन का मूल उद्देश्य मितव्ययिता एवं दक्षता के साथ लोकहित एवं कल्याणकारी कार्यो को पूरा करना है जिनका उल्लेख POSDCORB में नही है।
- मानव संबंधी विचारको के दृष्टिकोण मे पोस्डकॉर्ब मात्र निर्जीव मशीनीय तंत्र मात्र है। जहां मानवीय संवेदनाओ की अवेहलना की गयी है। जबकि प्रक्रियाओं का संचालन एक कला है जहां मानव के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक व्यवहार को देखा जा सकता है।
- लेविस मेरियस ने कहा कि यह सिद्धांत अत्यन्त स्वेच्छाचारी, काल्पनिक एवं संकुचित है, जिसमें प्रशासन के वास्तविक तत्वों को कोई स्थान नही दिया गया है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'पोस्डकॉर्ब' 'प्रबन्ध' के संकुचित दायरे की व्याख्या करता है। और इसे पूर्ण नही माना जा सकता साथ ही इसे मशीनीकृत दृष्टिकोण की संज्ञा दी जाती है जो मानवीय तत्व की अवहेलना करता है। बावजूद इसके यह आज भी 'प्रबन्ध' कार्यो का आधार बना हुआ है, जिसकी पुष्टि एवं महत्व इसके सतत् प्रयोग से सिद्ध हो जाती है। अत: यह प्रबन्ध का महत्वपूर्ण उपकरण है।

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध (एम.बी.ओ.) तकनीक

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध का संक्षिप्त नाम एम.बी.ओ. है। यह एक अमेरिकी अवधारणा है जिसके प्रतिपादक पीटर एफ. ड्रकर माने जाते है। एम.बी.ओ. आधुनिक प्रबन्ध की एक तकनीक या एक दर्शन या एक उपागम के रूप में लोकप्रिय हो चुका है। प्रबन्ध चिन्तन के पितामह पीटर एफ. ड्रकर ने अपनी पुस्तक The Practice of Management के माध्यम से एम.बी.ओ. दर्शन की ओर लोगों का ध्यान अपनी ओर खीचा तथा इसे स्वनियंत्रण के साथ जोड़ते हुए स्पष्ट किया कि किसी भी संगठन के अन्दर कार्यरत श्रमिको द्वारा किए जाने वाले सभी कृत्यों का सीधा संबंध उस संगठन के व्यावसायिक लक्ष्यों की ओर होना चाहिए।

''एम.बी.ओ. एक व्यापक प्रबन्ध की व्यवस्था है, जो बहुत-सी मुख्य प्रबन्धकीय गतिविधियों को व्यवस्थित ढंग से एकीकृत करती है। ऐसा संगठनात्मक उद्देश्यों की प्रभावी तथा कुशलतापूर्वक प्राप्ति के लिए चेतनापूर्ण निर्देशन के द्वारा किया जाता है।'' इस प्रकार उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध वह तकनीक है जो संगठन के सभी प्रयासों को लक्ष्य प्राप्ति की ओर निर्देशित करती है।

एम.बी.ओ. वह दर्शन या उपागम है जो यह निश्चित करता है कि संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति मे कार्मिकी के कार्यो तथा गतिविधियों को कैसे जोड़ा जाए। एम.बी.ओ. का दर्शन इस तथ्य पर आधारित है कि प्रत्येक कार्मिक विशेषतया उच्चा प्रबन्धकों को यह बोध हो कि उसके संगठन के लक्ष्य उससे किस प्रकार के कार्य निष्पादन की अपेक्षा करते है।

M.B.O. की विशेषताएं

- इसके उपक्रम का लक्ष्य तथा उसके अनुरूप विभिन्न विभागों के लिए लक्ष्य निर्धारित किये जाते है।
- यह प्रबन्ध की विचारधारा, दृष्टिकोण या उपागम के साथ-साथ एक दर्शन है।
- इसमें प्रत्येक प्रबन्धक का निष्पादन स्तर इस प्रकार से निश्चित किया जाता है कि वह संस्था के मूल उद्देश्यों की पूर्ति मे सहायक हो।
- इसमें प्रत्येक प्रबन्ध के निष्पादन का मूल्यांकन उसके लिए निर्धारित लक्ष्यो के संदर्भ मे किया जाता है।
- यह उपागम, संगठन के आन्तरिक नियंत्रण, एकीकरण सहित कार्मिकों के लिए स्वनियंत्रण का कार्य भी करता है।
- उद्देश्यों का निर्धारण सभी कार्मिक यथा संचालक, प्रबन्धक, सहायक प्रबन्धक व अधीनस्थ मिलकर करते है, अत: यह सहभागिता पर आधारित तकनीक है।

M.B.O. के क्रियान्वयन हेतु निम्न चरण है

उद्देश्य निर्धारण

चूंकि- मिशन (Mission) लक्ष्य (Aim), उद्देश्य (Objective), प्रायोजन (Purpose) ये शब्द समानार्थक के रूप में अपनाये जाते है किन्तु इनका अर्थ भिन्न होता है। अत: लक्ष्य अंतिम उद्देश्य है जबकि उद्देश्य-इकाई उद्देश्य के रूप में है। अत: लक्ष्य को प्राप्त करने तथा प्रभावी प्रबंधन हेतु उद्देश्य SMART होना चाहिए।

S = Specific (विशिष्ट)
M = Measurable (नापा या मापा जा सके)
A = Attainable (प्राप्त किया जा सकें)
R = Realistic (वास्तविकता का पुट हो)
T = Time bound (समयबद्ध हो)

महत्वपूर्ण क्षेत्रों की पहचान

परिणामों या प्रभावशीलता के आंकलन हेतु क्षेत्र विशेष को इंगित करना जैसे- लाभ देयता, गुडविल, नवाचार, उत्पादकता, संसाधन, गुणवत्ता, मूल्य सूचकांक, आदि। इनके आधार पर ही आगामी रणनीति का निर्माण संभव है।

अधीनस्थो हेतु उद्देश्यों का निर्धारण

संगठन के प्रत्येक स्तर पर कार्मिक एवं प्रबंधकों के उद्देश्यों (इकाई) का समायोजन ही अंतिम उद्देश्य या परिणाम होता है। अत: शीर्षस्थ एवं अधीनस्थ की सहमति के आधार पर इनका निर्माण किया जाता है।

संसाधन

उद्देश्य निर्धारण के पश्चात मानवीय एवं भौतिक संसाधनों को जुटाना एवं व्यवस्थित करना ताकि उद्देश्य प्राप्ति सुगम हो सके।

परिणामों (उद्देश्यों) की समीक्षा एवं मूल्यांकन

इसमें समय-समय पर की जाने वाली मीटिंग एवं मॉनिटरिंग आदि आते है। जिससे प्रक्रिया में आने वाली व्यवहारगत त्रुटियां एवं समस्याओं को दूर किया जा सके।

पुनर्चक्रीकरण या प्रतिपुष्टि (Recycling or Feedback)

लक्ष्य की प्राप्ति एवं नये लक्ष्यों के निर्धारण एवं उनकी सफलता का यह क्रम निरंतर चलता रहता है। इसी दौरान प्राप्त निष्कर्षो को उच्च स्तरों पर प्रेषित कर उनमें सुधार की गुंजाइश या प्रतिक्रिया की अपेक्षा की जाती है जिसे प्रतिपुष्टि कहा जाता है।

यदि M.B.O. तकनीक का विशेषलण किया जाए तो ज्ञात होता है कि **यह महज लक्ष्य प्राप्ति का साधन न रह कर, संगठनात्मक परिवर्तन एवं विकास का आधार बनाता है** जो संगठन की साख के रूप मे जाना जाता है। किन्तु इसकी कुछ सीमाएं भी है क्योकि इसक उपयोग मे अधिक समय, श्रम तथा बौद्धिकता की आवश्यकात होती है। जो हर समय संभव नही हो पाता है। यही नही समय-समय पर किया जाने वाला मूल्यांकन अधीनस्थों के मनोबल को गिरता है तथा उनकी **कार्यबल (working spirite) पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।** लम्बे समय से **संगठन के साथ जुड़े** कार्मिक भी संगठन के लक्ष्य एवं उद्देश्यों में अन्तर नही कर पाते है तथा व्यावहारिक पक्ष को कमजोर बनाते है।

उपरोक्त कमियो या सीमाओं के बावजूद भी इसका महत्व कम करना प्रबन्ध की इस महत्वपूर्ण तकनीक के साथ अन्याय होगा, क्योकि M.B.O. ऐसी अवधारणा है जिसमें संगठन के लक्ष्यों और उद्देश्यों को निर्धारित व निश्चित करने के लिए सामूहिक प्रयास किया जाता है, परिणाम स्वरूप कुशलता, उत्पादन, निष्पादन, प्रभावशीलता, स्पष्टता तथा सन्तुष्टि मे वृद्धि होने के अतिरिक्त संगठनात्मक परिवर्तन एवं विकास का आधार भी बनता है। अत: समय एवं परिस्थिति के अनुरूप उद्देश्यपूर्ण व प्रभावी के साथ-साथ एक व्यावहारिक प्रविधि भी सिद्ध हुई।

कुशल प्रबन्ध की कसौटियां क्या है?

आधुनिक कल्याणकारी राज्य में सरकार 'अधिकतम संख्या में अधिकतम कल्याण के लिए' बहुत से कार्य अपने हाथ मे लेती है जिसके परिणामस्वरूप इसका प्रबंधकीय क्षेत्र लगातार बढ़ रहा है। इस निपुण प्रबंध को कुशल प्रबंध कहा जाता है। समस्या यह है कि प्रबंध को इस निपुणता या कुशलता का परीक्षण कैसे किया जाए इस संदर्भ मे निम्नलिखित कसोटियों के आधार पर कुशल प्रबंध का परीक्षण कर सकते है-

संतोषजनक सेवा

संतोषजन सेवा से अभिप्राय न्यायोचित सेवा है अर्थात सभी नागरिकों के साथ समान व्यवहार। इसमें प्रबंध द्वारा उपलब्ध की जा रही किसी भी सेवा में किसी भी आधार पर भेदभाव नही किया जा सकता। इसमें समय पर सेवा उपलब्ध होनी चाहिए, पर्याप्त सेवा अर्थात सभी नागरिकों के लिए ठीक समय पर ठीक मात्रा में सप्लाई होनी चाहिए, लगातार सेवा अर्थात सहायता की अपेक्षा रखने वाले नागरिकों को सदा उपलब्ध सेवा इसमें प्रगतिशील सेवा अर्थात वह सेवा जो गुणात्मक दृष्टि से सुधार रही है।

उत्तरदायी निष्पादन

कुशल प्रबन्ध को निरंकुशता से बचना तथा प्रत्येक कार्य करते समय अपने उत्तरदायित्वों को ध्यान मे रखना चाहिए। यह उत्तरदायित्व समाज के प्रति, शीर्ष अधिकारियों के प्रति नागरिकों के प्रति या विधायकों के प्रति हो सकते है।

तकनीकी उत्कृष्टता

एक कुशल प्रबंध को सदैव उन्नत तकनीकी के प्रयोग पर ध्यान देना चाहिए क्योकि तभी संगठन सामयिक एवं प्रासंगिक बना रह सकता है।

दक्षता

दक्षता के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के गुण जैसे कार्य में शीघ्रता, मितव्ययिता, उचित प्रक्रिया, साधनों का अधिकतम प्रयोग व मानव संतोष को प्राथमिकता आदि आते है।

निरंतरता

अर्थात प्रतिकूल परिस्थितियों यथा वर्षा, हिमपात, रात्रि दूर-दुर्गम, भौगोलिक विस्तार आदि अवरोधों को पार करते हुए संगठन को कार्य करना चाहिए।

मिलेट संतोषजनक सेवा व समय पर सेवा को सुप्रबंध की कसौटी मानते है। उन्होने तीन कसौटियों बताई है-

- संतोषजनक सेवा।
- उत्तरदायित्व का पूर्ण निष्पदन।
- उत्तम शासन जो उपयुक्त है।

गुलिक ने अच्छे प्रबन्ध की तीन कसोटियो का उल्लेख किया है-

- तकनीकि रूप से कार्य संचालन को व्यवस्थित करना।
- राजनीतिक उत्तरदायित्व निर्धारित करना।
- जनता को स्वीकार्य तथा व्यावसायिक रूप से अनुमोदित एवं सामाजिक रूप से अनुमोदित व रचनात्मक कार्यो को प्राथमिकता देना।

इस प्रकार उक्त कसौटियों कुशल प्रबंध के लिए निर्णायक आधार प्रदान करती है। इनके आधार पर हम प्रबन्ध की कुशलता का परीक्षण अधिक तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से कर सकते है।

नियोजन (Planning)

नियोजन का अर्थ है, भूत तथा वर्तमान से सम्बंधित सूचनाओं का विश्लेषण करना तथा सम्भाव्य भावी घटनाओं की समीक्षा करना जिससे काम करने का ऐसा रास्ता निर्धारित किया जा सके जो संगठन को अपने उल्लिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने मे सहायता दे अर्थात भविष्य मे घटित होने वाली घटनाओं का सामना करने के लिए एक श्रेष्ठ कार्यक्रम का पहले से ही चुनाव करना नियोजन है। न्यूमैन के अनुसार ''सामान्यत: भविष्य मे क्या करना है इसका पूर्वनिर्धारण ही नियोजन है। इस दृष्टि से नियोजन मानवीय व्यवहार के अत्यन्त व्यापक रूप को अपने में सम्मिलित करता है।'' नियोजन के इस अर्थ से इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती है-

- नियोजन मौलिक रूप से एक निर्णय लेने की प्रक्रिया है।
- नियोजन भावी कार्यक्रम की एक रूपरेखा होती है।
- योजना के द्वारा योजना का केवल एक उपयुक्त जोखिम का चुनाव करता है।
- नियोजन सभी प्रकार के क्षेत्रों मे उपयोगी है, जैसे- खेल, चुनाव, अध्ययन तथा युद्ध।

नियोजन की विशेषताएँ

- **प्राथमिक कार्य (Primary Function)**- प्रबंध, नियोजन का आधारभूत एवं प्राथमिक कार्य है।
- **सर्वव्यापी कार्य (Pervasive Function)**- नियोजन संस्था के प्रत्येक विभाग के प्रत्येक स्तर पर किया जाता है। संस्था के संगठन, अभिप्रेरणा एवं नियंत्रण की प्रक्रिया मे भी नियोजन आवश्यक है। इतना ही नहीं, उपक्रम के वित्तीय, उत्पादन, वितरण सामान्य प्रशासन जैसी क्रियाओ में भी नियोजन किया जाता है।
- **उद्देश्यपूर्ण (Purposeful)**- नियोजन के द्वारा ही उद्देश्यों तथा उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्यों, साधनों, कार्यविधियों आदि का निर्धारण किया जाता है।
- **परस्पर आश्रित कार्य (Inter-Dependent Activey)**- नियोजन प्रबंध-प्रक्रिया की प्रथम क्रिया होने के उपरान्त भी यह परस्पर आश्रित क्रिया है।
- **एक प्रक्रिया (its is a process)**- इस प्रक्रिया मे प्रबंधक वातावरण का विश्लेषण करके भविष्य का पूर्वानुमान लगाकर संस्था के उद्देश्यों को निर्धारित करते है।
- **सतत प्रक्रिया (It Is a Continous Process)**- नियोजन का एक प्रमुख लक्षण यह भी है कि यह प्रक्रिया निरन्तर रूप से चलती रहती है।
- **बौद्धिक प्रक्रिया (It Is An Interllectuel Process)**- नियोजन प्रक्रिया में नियोजन मे नियोजन की समस्या के विश्लेषण, विकल्पों के निर्माण एवं मूल्यांकन तथा सर्वोत्तम विकल्प के चयन मे मानसिक एवं बौद्धिक क्षमताएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
- **पदानुक्रम प्रक्रिया (Hierarchy Process)**- नियोजन की एक विशेषता यह भी है पदानुक्रम प्रक्रिया है।
- **भविष्योन्मुख (Futuristic)**- नियोजन करते समय भावी अवसरों एवं चुनौतियों दोनों को ध्यान में रखा जाता है।
- **समयबद्ध (Time-Bound)**- यह भविष्य की निश्चित समयावधि के लिए होता है।
- **समायोजनीय (Adjustable)**- नियोजन भावी परिस्थितियों के अनुसार समायोजनीय/समायोजन-योग्य होता है।
- **कार्य-पथों के लिए प्रतिबद्धता (Commitment To Cources Of Actions)**- नियोजन में प्रबंध तदर्थ रूप से इस बात के लिए वचनबद्ध होते है कि वे भविष्य मे कुछ निश्चित कार्यो को निश्चित प्रक्रिया, कार्यक्रम के अनुरूप पूरा करेगे।
- **संसाधनों की प्रतिबद्धता (Commitment Of Resources)**- नियोजन की एक विशेषता यह भी है कि इसमें संसाधनों (भौतिक, मानवीय, वित्तीय) का निर्धारण भी किया जाता है।
- **नियोजन मे निर्णयन सम्मिलित (Planning Involves Deision-Making)**- निर्णयन से तात्पर्य उपलब्ध विकल्पों मे से किसी श्रेष्ठ विकल्प का चयन करना है। नियोजन प्रक्रिया मे भी सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करना ही पड़ता है।
- **पूर्वानुमान नियोजन का आधार (Forecasting Is The Basic Of Planning)**- नियोजन में भविष्य मे किये जाने वाले कार्यो का निर्धारण किया जाता है।

नियोजन का प्रबंधन मे महत्व, आवश्यकता एवं लाभ (Need, Importance and Advantages of Planning)

नियोजन वह आधारभूत प्रबंधकीय कार्य है जिसके द्वारा एक संगठन दिन-प्रतिदिन बदलते हुए वातावरण में अपने आपकों स्थायी बनाए रखता है। मिलर (Miller) ने ठीक ही कहा है कि 'योजना के बिना कोई भी कार्य केवल अटकलबाजी के समान ही होगा तथा उससे केवल संदेह ही उत्पन्न होगा।' संक्षेप में, नियोजन की आश्यकता, महत्व एवं लाभों को निम्न शीर्षकों मे समझाया गया है-

- **उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या**- नियोजन करने के लिए सर्वप्रथम उद्देश्य निर्धारित करने पड़ते है।
- **उद्देश्यों की प्राप्ति मे सहायक**- नियोजन वह प्रक्रिया है जो उन क्रियाओं एवं कार्यपथों (Courses of Action) को निर्धारित करती है जिनसे संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है।
- **अनिश्चितता मे कमी**- प्रभावशाली नियोजन सूचनाओं के अभाव के कारण उत्पन्न होने वाले भ्रम के खतरे को कम कर देता है।
- **परिवर्तनों के लिए तैयारी**- नियोजन परिवर्तनों का सामना करने की योग्यता मे सुधार करता है।
- **मितव्ययिता को प्रोत्साहन**- नियोजन से सभी कार्य व्यवस्थित रूप से पूर किये जाते हैं। फलत: कार्य मे दोहराव तथा अपव्यय नहीं होता है। इससे अंतत: संस्था मे मितव्ययिता को प्रोत्साहन मिलता है।
- **प्रतिस्पर्धी क्षमता में वृद्धि**- नियोजन के द्वारा नई वस्तुओं का निर्माण प्रारम्भ किया जा सकता है, संयंत्र की क्षमता मे वृद्धि की जा सकती है, वस्तुओं के गुण एवं आकृति में परिवर्तन किया जा सकता है और इसके लाभ संस्था की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में वृद्धि की जा सकती है।

- **सहयोग एवं समन्वय मे सुविधा**- नियोजन के कारण संस्था के उद्देश्य स्पष्ट हो जाते है, नीतियाँ एवं नियम निश्चित हो जाते है, कार्यविधियाँ एवं कार्यक्रम भी तय रहते है।
- **उतावले निर्णयो पर रोक**- नियोजन से हम उतावले निर्णयों एवं अटकलबाजी वाले कार्यो की प्रकृति को समाप्त कर सकते है।
- **नियंत्रण मे सुगमता**- योजना एक ऐसा तंत्र है जिसके द्वार एक प्रबंधक अपने अधीनस्थों की कार्यक्षमता एवं कार्यो पर सुगमता से नियंत्रण कर सकता है।
- **कर्मचारियों को अभिप्रेरणा**- नियोजन से लक्ष्यों के साथ-साथ पारिश्रमिक एवं पुरस्कारों की भी जानकारी हो जाती है।
- **अधिकारों के विकेन्द्रीकरण एवं प्रत्यायोजन में सुविधा।**
- **नये एवं सृजनशील विचारों को प्रोत्साहन**- एक अच्छा नियोजन नयें एव सृजनशील विचारों को प्रोत्साहित करता है। यह नवीन प्रवृत्तियों का विकास करता है। जिससे संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति मे भारी सफलता मिलती है।
- **प्रबंधक प्रक्रिया की सफलता मे योगदान**- नियोजन अन्य प्रबंधकीय कार्यो का आधार है। नियोजन के बिना संगठन एवं अभिप्रेरण के लिए कोई भी नहीं होगा तथा नियंत्रण की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।

अन्य लाभ

- संस्था में विकास एवं सुधार होता है।
- संकटों का पूर्वानुमान हो जाता है।
- संस्था में कुशल संचार व्यवस्था स्थापित करने में मदद मिलती है।
- प्रशिक्षण का आधार तैयार हो जाता है।
- संस्था मे भवियोंन्मुख विचारों का जन्म होने लगता है।

नियोजन की सीमाएँ (Limitations Of Planning)

नियोजन बहुत ही लाभप्रद होता है किन्तु इसकी अनेक सीमाएँ भी है, इसमें अनेक बाधाएँ भी आती है जिसके कारण नियोजन का विरोध भी किया जाता है। नियोजन की प्रमुख सीमाएँ/बाधाएँ निम्नानुसार है-

- **उद्देश्यों की अस्पष्टता (Ambguity of Objectives)**- अस्पष्ट उद्देश्य नियोजन करने एवं उसके क्रियान्वयन करने में बहुत बड़ी बाधा बन जाते है।
- **अयथार्थ पूर्वानुमान (Inaccurate Forecasts)**- नियोजन पूर्वानुमानों पर आधारित होते है जो कई बार गलत या अयथार्थ सिद्ध हो जाते है।
- **गलत मान्यताएँ (Inaccurate Premises)**- प्रत्येक नियोजन कुछ मान्यताओं पर आधारित होता है। किन्तु कभी-कभी वे मान्यताएँ समय के परिवर्तन के साथ-साथ अमान्य एवं गलत हो जाती है।
- **पहलपन की भावना की समाप्ति (Stifles Initiative)**- नियोजन कर्मचारियों की पहल करने की भावना का गला घोंट देता है। सभी सदस्यों को नियोजन के ढाँचे के भीतर निर्धारित नीतियों, व्यूहरचनाओं, प्रक्रियाओं, विधियों, नियमों के भीतर बँधकर कार्य करना होता है।
- **व्यावहारिक सोच का अभाव (Lack of Pragmatism)**- कुछ प्रबंधकों की सोच बहुत ही पुरातन एवं कठोर होती है। उसमें व्यावहारिकता का अभाव होता है।
- **परिवर्तनों का विरोध (Resistance ot Changes)**- मानव सामान्यत: परिवर्तनों को आसानी से स्वीकार नहीं करता है।
- **विद्यमान उद्देश्यों एवं योजनाओं की लोचहीनता (Inflexibility of Existing Objectives And Plans)**- कभी-कभी विद्यमान उद्देश्य एवं योजनाएँ (अर्थात् नीतियाँ, कार्यक्रम कार्यविधियाँ) लोचहीन होती है या हो जाती है। उनमें परिवर्तन करना कठिन ही नहीं असम्भव भी हो जाता है। फलत: भावी नियोजन में भी कटिनाइयाँ उत्पन्न होती है।
- **नियोजन क्षमताओं/योग्यताओं का अभाव (Lack of Planning Capabilites Skills)**- सभी प्रकार का नियोजन एक बौद्धिक प्रक्रिया है। अत: नियोजन करने हेतु वैचारिक, तकनीकी, मानवीय आदि योग्यता की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु व्यवहार मे सभी प्रबंधक समान रूप से योग्य एवं क्षमतावान नहीं होते है। फलत: सभी प्रबंधक व्यापक सोच-विचार के साथ नियोजन नहीं कर पाते है और वह असफल हो जाता है।
- **प्रबंधको का पक्षपातपूर्ण या पूर्वाग्रहपूर्ण व्यवहार (Biased Attitude Of Managers)**- सभी प्रबंधक सदैव विवेकपूर्ण व्यवहार नहीं करते है। वे कभी-कभी पक्षपातपूर्ण या पूर्वाग्रहपूर्ण व्यवहार भी करते है। इसका कारण है कि सभी की अपनी-अपनी पसंद, नापसंद, वरीयता, व्यक्तिगत रूचि होती है और नियोजन निष्प्रभावी एवं असफल हो जाता है।
- **अन्य क्रियात्मक योजनाओं के साथ समन्वय मे कमी (Lack of Coordination wiht other Funcional Plans)**- कोई भी योजना तब तक सफल नहीं हो सकती है जब तक कि उसका अन्य क्रियात्मक योजनाओं के साथ उचित समन्वय नहीं होता है।
- **प्रबंधको का आपसी संघर्ष (Conflict Among Managers)**- नियोजन मे समस्या तक भी उत्पन्न हो जाती है जब विभिन्न प्रबंधकों में आपसी संघर्ष उत्पन्न हो जाता है।
- **मनोवैज्ञानिक बाधाएँ (Phychological Barriers)**- नियोजन करने तथा उसका क्रियान्वयन करने में मानसिक बाधाएँ भी आती है।
  - कुछ प्रबंधक यह सोचते है कि भविष्य की तुलना मे वर्तमान पर ही ध्यान देना चाहिए।
  - कुछ प्रबंधक यह सोचते है कि भविष्य मे जो कुछ होता है, वह होकर रहेगा। नियोजन से भविष्य को बदला जा सकता है। अत: नियोजन अनावश्यक है।
  - कुछ प्रबंधक यह सोचते हैं कि नियोजन सदैव सही एवं सफल नहीं होता है। अत: नियोजन पर धन एवं समय व्यर्थ ही जाता है।

- कुछ प्रबंधक अयोग्य एवं अव्यावहारिक होते है। वे नियोजन की बौद्धिक प्रक्रिया को पूरा करने के अयोग्य होते है। अत: उन्हे अपनी अकुशलता के उजागर होने का भय होता है। फलत: वे नियोजन के मार्ग मे बाधक ही बनते है। ऐसी मानसिक धारणाओं वाले प्रबंधक नियोजन की उपयोगिता को सीमित एवं बाधित कर देते है।

- **खर्चीला (Expensive)**- नियोजन मे भारी खर्चे करने पड़ते है। काफी समय, शक्ति एवं धन तथ्यों के संग्रह करने, जाँच करने आदि मे व्यय करना पड़ता है।
- **अपर्याप्त संसाधन (Inadequate Resources)**- नियोजन के क्रियान्वयन हेतु पर्याप्त संसाधन (भौतिक, वित्तीय, मानवीय एवं सूचनात्मक संसाधन) उपलब्ध होने चाहिए। अपर्याप्त संसाधनों की दशा में श्रेष्ठतम नियोजन भी सफल नहीं हो पाता है।

प्रभावी नियोजन के आवश्यक तत्व/आधार/मापदण्ड (Essentials/Criteria Of Effective Planning)

प्रभावी नियोजन के कुछ आधारभूत तत्व या लक्षण होते है। इन आधारभूत तत्वों को नियोजन की प्रभावशीलता के मापदण्ड भी कहा जा सकता है। संक्षेप में, प्रभावी नियोजन के मापदण्ड या आधारभूत तत्व निम्नानुसार है-

- **स्पष्ट निर्धारित उद्देश्य (Well-Defined Objectives)**- स्पष्ट उद्देश्य ही सभी नियोजनों के आधार स्तम्भ होते है। अत: एक अच्छा नियोजन वह होता है जिसके उद्देश्य स्पष्ट रूप से निर्धारित होते है। ये उद्देश्य पूर्णतया स्पष्ट एवं सारगर्भित हों।
- **विस्तृत (Comprehensive)**- नियोजन विस्तृत होना चाहिए ताकि उसे समझने मे किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित न हो। एक नियोजन मे वे सभी कार्य सम्मिलित किए जाने चाहिए जो कि सम्पूर्ण नियोजन को पूरा करने के लिए आवश्यक है।
- **लोच (Elexible)**- एक प्रभावशाली नियोजन का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह भी है कि वह लोचशील हो। डेविस (Davis) के शब्दों में, ''नियोजन लोचशील होता है जिसे बिना किसी भयंकर आर्थिक एवं कार्यक्षमता की हानी के बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन किया जा सके।''
- **संतुलित (Balanced)**- प्रत्येक उद्देश्य के पूर्ति हेतु साधनों के प्रयोग मे पूर्ण रूप से सन्तुलन होना चाहिए।
- **समन्वित (Intergrated)**- नियोजन तभी सफल हो सकता है जबकि संस्था के विभिन्न विभागों के नियोजन समन्वित हो।
- **विश्वसनीय (Reliable)**- नियोजन विश्वसनीय तभी होता है जबकि उसके बनाने में प्रयुक्त सूचना, आँकड़ें तथा अन्य तथ्य विश्वसनीयता को बढ़ा सकती है।
- **व्यावहारिकता (Practicable)**- यदि नियोजन अव्यावहारिक या असम्भव है या दोनों ही है तो प्रेरणा ही समाप्त हो जाती है। यदि वे बहुत ही सरल एवं सामान्य हैं तो असामान्य सफलता की आशा नहीं की जा सकती है।
- **मानव-मुखी (Human-Face)**- नियोजन करने वाले, क्रियान्वित करने वाले तथा नियोजन से प्रभावित होने वाले सभी उससे लाभान्वित एवं संतुष्ट हो सकें, तभी उसे अच्छा नियोजन कहा जायेगा।

नियोजन प्रक्रिया या तकनीक का विस्तार (Technique Or 'Process' Of Planning Or Steps In Planning)

नियोजन भविष्य मे किये जाने वाले कार्यो का निर्धारण करने की एक बौद्धिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को पूरा करने के लिए विभिन्न विद्धानों ने विभिन्न कदम उठाने या चरण लेने का सुझाव दिया है। टैरी ने आठ चरणों में वर्णन किया है। संक्षेप में, एक नियोजन प्रक्रिया मे निम्नलिखित चरण आवश्यक होते है।

- **वातावरण का विश्लेषण एवं मूल्यांकन (Analysis And Evaluation Of The Environments)**- नियोजन करने हेतु सर्वप्रथम प्रबंधकों को संस्था के बाह्य एवं आन्तरिक वातावरण का अध्ययन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन करना पड़ता है।
- **संस्था का आन्तरिक मूल्यांकन (Internal Appraisal Of The Firm Or Comany)**- संस्था के बाह्य विपणन वातावरण का मूल्यांकन करने के बाद संस्था का आंतरिक मूल्यांकन किया जाता है। इस हेतु संस्था का 'स्वॉट अनालिसिस' (SWOT Analysis) किया जाता है। 'स्वॉट' (SWOT) परिवर्णी शब्द है जिसमें सम्मिलित शब्दों का अर्थ अग्रलिखित है-
  S = Strenghts अर्थात शक्तियाँ या गुण या सकारात्मक बातें।
  W = Weaknesses अर्थात कमियाँ या अवगुण।
  O = Oportunities अर्थात अवसर।
  T = Threats अर्थात संकट या खतरे।
- **उद्देश्यों का निर्धारण करना (Setting Objectives)**- नियोजन प्रक्रिया के अगले चरण के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है।
- **नियोजन की मान्यताओं का निर्धारण (Establishing Planning Premises)**- सभी सूचनाओं के विश्लेषण के बाद नियोजन की मान्यताएँ निर्धारित करनी चाहिए। मान्यताएँ वास्तव मे वे सीमाएँ हैं जिनके भीतर रहकर नियोजन करना होता है।
- **वैकल्पिक योजनाओं की खोज (Discovering Alternative Plans)**- सामान्यत: किसी भी कार्य को करने या उद्देश्य को प्राप्त करने के अनेक विकल्प होते है।
- **विकल्पों का मूल्यांकन करना (Evalating Alternatives)**- विविध विकल्पों की खोज के बाद उन विकल्पों का मूल्यांकन किया जाता है। मूल्यांकन हेतु मस्तिष्क के साथ-साथ तकनीकी यंत्रों/उपकरणों का भी उपयोग करना चाहिये।
- **समुचित विकल्प का चयन (Selecting Appropriate Alternative)**- सभी विकल्पों का मूल्यांकन कर लेने के बाद प्रबंधक किसी एक समुचित विकल्प का चयन करता है। यह विकल्प विद्यमान परिस्थितियों में प्रबंधक को सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है।
- **कार्य योजनाओं का निर्माण (Formulating Action Plans)**- संस्था के नियोजन के बाद उसके क्रियान्वयन के लिए आवश्यक कार्य योजनाओं का निर्माण किया जाता है।
- **संसाधन का आवण्टन अर्थात बजट निर्माण (Allocating Resources i.e. Gudgeting)**- नियोजन प्रक्रिया मे अगले चरण में नियोजन के क्रियान्वयन हेतु आवश्यक संसाधनों का आवण्टन किया जाता है। प्रबंधन बजट तैयार करता है।

- **योजना का क्रियान्वयन (Implementing The Plan)**- नियोजन की सफलता योजना के सफल क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। इस हेतु उसे सम्पूर्ण विभाग का समुचित संगठन, निर्देशन एवं नियंत्रण करना होता है। उसे सही व्यक्तियों को सभी कार्य सौंपने होते है। अन्त में, उन सभी के कार्यो का समुचित नियंत्रण भी करना होता है ताकि नियोजन के उद्देश्यों की पूर्ति हो सके।
- **अनुवर्तन (Follow-up)**- नियोजन के इस चरण पर योजना के क्रियान्वयन का अनुवर्तन किया जाता है। इस चरण पर प्रबंधक योजना के क्रियान्वयन पर निगरानी रखता है योजना के परिणामों की नियोजन के लक्ष्यों से तुलना करता है।

नियोजन के प्रकार

- **समायावधि के आधार पर।**
- **प्रकृति के आधार पर।**
- **प्रबंधकीय स्तर के आधार पर।**

समायावधि के आधार पर प्रकार (Type Of Time Dimension)

समयावधि के आधार पर नियोजन तीन प्रकार का हो सकता है-

i. **दीर्घकालीन नियोजन (Long-Range Planning)**- दीर्घकालीन नियोजन सामान्यत: पांच वर्ष से अधिक की अवधि का ही होता है। दीर्घकालीन नियोजन दीर्घकालीन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया गया नियोजन है।

लाभ या गुण (Merits)

दीर्घकालीन नियोजन के प्रमुख गुण निम्नानुसार है-

- वृहद् आकार के उपक्रमों की स्थापना आसानी से की जा सकती है।
- राष्ट्रीय विकास योजनाओं मे महत्वपूर्ण रूप से योगदान मिलता है।
- भावी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वर्तमान मे प्रयास प्रारम्भ किये जा सकते है।
- आर्थिक विका का गति चक्र चलता रहता है।

दोष या सीमाएँ

- लम्बी अवधि की योजनाओं की सफलता साधनों की उपलब्धता पर निर्भर करती है। अत: साधनों की उपलब्धि में अनियमितता से योजना खटाई मे पड़ जाती है।
- परिवर्तनों की गति तथा तीव्रता मे अंतर आने पर नियोजन असफल हो जाता है।

ii. **मध्यकालीन नियोजन (Medium-Range or Intermediate Planning)**- प्राय: एक वर्ष से अधिक तथा तीन वर्षो से कम अवधि के नियोजन को मध्यकाली नियोजन कहते है। ऐसा नियोजन संस्था या उसके किसी विभाग की विद्यमान क्षमता का पूर्ण उपयोग करने के लिए ही किया जाता है।

iii. **अल्पकालीन या अल्पावधि नियोजन (Short-Range Planning)**- जो नियोजन बहुत ही कम अवधि के होते है, वे अल्पकालीन या अल्पावधि नियोजन कहलाते है। सामान्यत: अल्पकालीन नियोजन एक सप्ताह से लेकर एक वर्ष से कम अवधि के ही होते है। अल्पकालीन नियोजन दिर्घकालीन एवं मध्यकालीन नियोजन के उद्देश्यों की पूर्ति क लिए ही किया जाता है।

प्रकृति के आधार पर प्रकार (Type of The Basis of Nature)

नियोजन की प्रकृति के आधार पर यह निम्नांकित पांच प्रकार का हो सकता है-

- **प्रशासकीय नियोजन (Admnistrative Planning)**- प्रशासकीय नियोजन वह नियोजन है जो संस्था की दीर्घकालीन नीतियों को निर्धारित करने के लिए किया जाता है। इस नियोजन से सम्पूर्ण संस्था की नीतियों एवं उद्देश्यों की रूपरेखा स्पष्ट हो जाती है। इस नियोजन से संस्था के स्वरूप एवं प्रकृति के बारे में भी सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है।
- **परिचालन नियोजन (Operational Planning)**- व्यूहरचनात्मक या दिर्घकालीन नियोजन को क्रियान्वित करने के लिए ही परिचालन नियोजन किया जाता है। परिचालन नियोजन व्यूहरचनात्मक नियोजन के अनुरूप किया गया वह अल्पकालीन नियोजन है जिसके अंतर्गत यह निर्धारित किया जाता है कि संस्था के दीर्घकालीन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निर्धारित व्यूहरचनाओं के अंतर्गत दिन-प्रतिदिन कौन-कौन से कार्य, किस प्रकार किये जाने है। ऐसा परिचालन नियोजन संस्था के विद्यमान संसाधनों, उत्पादों, बाजार आदि के अनुरूप ही किया जाता है। यह नियोजन परिचालन प्रबंधकों/प्रथम पंक्ति प्रबंधकों द्वारा ही किया जाता है।
- **व्यूहरचनात्मक नियोजन (Strategic Planning)**- व्यूहरचनात्मक नियोजन वह प्रक्रिया है जिसमें सम्पूर्ण संस्था के दीर्घकालीन उद्देश्यों तथा उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ऐसी व्यूहरचनाओं को निर्धारित किया जाता है जिससे संस्था गतिशील एवं प्रतिस्पर्धी वातावरण मे श्रेष्ठतम ढंग से उन उद्देश्यों को पूरा कर सके।
- **क्रियात्मक नियोजन (Fnctional Planning)**- क्रियात्मक नियोजन संस्था के विभिन्न क्रियात्मक क्षेत्रों या विभागों के लिए किया जाता है। प्रत्येक क्रियात्मक नियोजन प्रत्येक विभाग का नियोजन है जो सम्बंधित विभाग के अधिकारियों एवं अधीनस्थों का मार्गदर्शन करता है तथा विभाग के उद्देश्यों की पूर्ति मे योगदान करता है।
- **परियोजना नियोजन (Project Planning)**- परियोजना किसी भी बड़े कार्य या योजना के किसी विशिष्ट चरण को पूरा करने के लिए बनायी गई उपयोजना है। अत: परियोजना नियोजन एक उप-नियोजन है जिससने किसी नियोजन के किसी विशिष्ट चरण के अंतर्गत की जाने वाली क्रियाओं का नियोजन किया जाता है।

संगठन

संगठन का अर्थ

सामान्य शब्दों में, संगठन का आशय अनेक व्यक्तियों की एक ऐसी स्थिति या संरचना से है जिसमें वे पहले से निश्चित लक्ष्य को पूरा करने के लिए योजनाबद्ध तरीके से कार्य करते है तथा एक-दूसरे को सहयोग देते हुए अपने निर्धारित कर्तव्यों का पालन सुव्यवस्थित ढंग से करते है। **परम्परागत दृष्टिकोण** के अनुसार, ''संगठन एक ऐसी 'संरचना व्यवस्था' है जिसके द्वारा एक निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्य को विभाजित, व्यवस्थित, परिभाषित और समन्वित किया जाता है। इस दृष्टिकोण मे मानव की भूमिका को कोई स्थान नही दिया गया था।''

आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार, ''संगठन का वह कोई भी अर्थ अधूरा है जिसमें मानव संबंधों को कोई स्थान नही दिया गया है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों के अनुसार संगठन चार्टो, रेखाचित्रों या अनुदेशों का ढाँचा मात्र न होकर एक सहकारी मानवीय क्रिया है और संगठन के संबंध मे ऐसा कोई भी विचार या सिद्धांत जो मानव संबंधों को महत्व देता है या उन पर विचार नही करता है, अनुचित, अव्यावहारिक तथा अवास्तविक है। इसलिए यह कहा जाता है कि यदि हम एक प्रशासकीय संगठन मे मानवीय पक्ष की उपेक्षा करते है तो इसका अर्थ है कि हम प्रशासन के हृदय की उपेक्षा कर रहे है।'' संक्षेप में, संगठन से तात्पर्य ऐसी कार्य योजना से है जिसमें विभिन्न व्यक्ति मिलकर अपने निश्चित उद्देश्यों की प्रप्ति के लिए योजनाबद्ध तरीके से कार्य करते है।

संगठन की परिभाषाएं- विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई संगठन की कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित है-

- **जे.डी. मूने** के अनुसार, ''सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मानवीय सहयोग का नाम ही संगठन है।''
- **एल. उर्विक** के अनुसार, ''संगठन का अर्थ है उन क्रियाओं का निर्धारण करना जो किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक हों और उनको ऐसे वर्गो में क्रमबद्ध करना जो कि विभिन्न व्यक्तियों को सौंपा जा सके।''
- **लूथर गुलिक** के अनुसार, ''संगठन सत्ता का औपचारिक ढांचा है, जिसके द्वारा किसी निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्यो को विभाजित तथा निर्धारित किया जाता है और उनका समन्वय किया जाता है।''
- **पिफनर** के अनुसार, ''संगठन का अर्थ व्यक्तियों एवं व्यक्तियों के बीच तथा वर्गो और वर्गो के बीच उन संबंधों से है जो इस प्रकार आयोजित किये जाये कि व्यवस्थित श्रम विभाजन किया जा सके।''
- **हरबर्ट साइमन** के अनुसार, ''संगठन परंस्पर व्यवहार करने वाले लोगों के वर्ग का ही नाम है।''
- **प्रो. एल. डी. ह्वाइट** के अनुसार, ''संगठन व्यक्तियों के मध्य कार्यरत संबंधों की व्यवस्था है।''
- **चेस्टर आई. बर्नार्ड** के अनुसार, ''दो या अधिक व्यक्तियों की सचेत समन्वित गतिविधियों की व्यवस्था ही संगठन है।''

निष्कर्षत: के रूप मे यह कहा जा सकता है कि संगठन ऐसे मानव समूह का नाम है जिसके सदस्यों के कर्तव्य एव उत्तरदायित्व स्पष्ट तथा सुनिश्चित होते है, कुछ वांछित उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे एक साथ मिलते है और इस सहकारी क्रिया के दौरान उनके बीच संबंधों का एक जटिल प्रारूप तैयार हो जाता है। व्यक्ति, सामूहिक प्रयास और सामूहिक उद्देश्य संगठन के तीन मुख्य तत्व है।

संगठन के आधार (Bases of Organisation)

संगठन का तात्पर्य है, ''कर्मचारियों की ऐसी व्यवस्था करना ताकि कार्यो तथा उत्तरदायित्वो के उचित विभाजन द्वारा निर्धारित उद्देश्य को आसानी से पूरा किया जा सके। इस प्रकार संगठन मे किसी निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्यो को विभाजित तथा निर्धारित किया जाता है और उनकी क्रियाओं मे उचित समन्वय स्थापित किया जाता है। अब यह प्रश्न उठता है कि इन कार्यो को किस प्रकार विभाजित किया जाए, अर्थात संगठन किस आधार पर किया जाए?

लूथर गुलिक ने उद्देश्य, प्रक्रिया, व्यक्ति और स्थान को संगठन मे कार्य विभाजन के उपयुक्त आधार बतलाये है। **न्यूमैन** ने उत्पादन, स्थान, ग्राहक प्रक्रियाओं और कार्यकलापों को आधार माना है। **मिलेट** ने उद्देश्य, प्रक्रिया, उत्पादनों व्यक्तियों और स्थानों को आधार मानने का सुझाव दिया है। अधिकांश विद्वानो ने संगठन के निम्न चार प्रमुख आधार बतलाये है-

कार्य अथवा लक्ष्य (Function of Purpose)

कार्य अथवा लक्ष्य से तात्पर्य उस प्रमुख कार्य एवं लक्ष्य से है, जिसे प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है अथवा उन सेवाओं से है जिनको प्राप्त करना है। उदाहरण के लिए, शिक्षा, सुरक्षा, शान्ति, स्वास्थ्य, संचार, यातायात एवं इसी प्रकार की अन्य सेवाएं वर्तमान लोक प्रशासन के महत्वपूर्ण लक्ष्य है। विभागों के बीच कार्य का जो विभाजन किया जाता है उसका महत्वपूर्ण आधार 'कार्य' ही समझा जाता है। केन्द्रीय एवं राज्य स्तर पर सरकारों द्वारा कार्य अथवा लक्ष्य को ही आधार मानकर विभिन्न स्थानों की स्थापना की जाती है। प्रमुख कार्य के अंतर्गत अनेक गौण कार्य भी सम्मिलित रहते है और इन गौण कार्यो के आधार पर इकाईयों को पुन: उप-इकाइयों मे बांट दिया जाता है। प्रमुख एवं गौण कार्यो के संबंध में निश्चित रूप से यह नही कहा जा सकता है कि कौनसा कार्य किस श्रेणी मे रखा जाये। वस्तुत: कार्य की प्रमुखता एवं गौणता विभिन्न देशों के व्यवहार, परम्परा, राजनीतिक जलवायु आदि से प्रभावित होती है। भारत मे केन्द्रीय सरकार के सुरक्षा, रेल, डाक-तार, गृह, कृषि, मानव संसाधन मंत्रालय तथा स्तर पर शिक्षा, पुलिस, न्याय, जल आपूर्ति, सिचांई और उद्योग विभाग कार्य अथवा लक्ष्य के आधार पर संगठित किये गये है। इस प्रकार जब किसी संगठन का निर्माण किसी निश्चित कार्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति के लिए किया जाता है तो उस संगठन का आधार कार्य कहलाता है।

संगठन के कार्य अथवा लक्ष्य आधार के पक्ष के तर्क- संगठन के कार्य अथवा लक्ष्य के आधार के पक्ष निम्नलिखित तर्क देये जाते है-

- **समन्वय तथा कार्यकुशलता**- इस प्रकार के संगठन के अंतर्गत प्रत्येक विभाग मे एक ही प्रकार के कार्य करने वाले व्यक्ति रहते है। उनमे लक्ष्यों की समानता रहती है अत: उनके बीच समन्वय सरलता से स्थापित किया जा सकता है। फलत: कार्य कुशलता मे वृद्धि होती है।
- **लोकतन्त्रीय तथा उत्तरदायी**- इस पद्धति मे प्रशासन मे कोई चूक या गलती होने पर जनता सरलता से किसी एक विभाग को उत्तरदायी ठहरा सकती है।

- **अनुशासित एवं नियंत्रित**- इस आधार पर निर्मित संगठन के अंतर्गत सभी स्तर के अधिकारियों के मध्य लक्ष्य की समानता रहने से अनुशासन एवं नियंत्रण बना रहता है।
- **कार्य शीघ्र होना**- इस प्रकार के संगठन मे कार्य शीघ्र होता है, क्योकि सारे साधन एक ही व्यक्ति के हाथों मे होते है।

विपक्ष मे तर्क- संगठन के कार्य अथवा लक्ष्य आधार के विपक्ष मे निम्नलिखित तर्क दिये जाते है-

- **श्रम-विभाजन ताथा विशिष्टीकण के विरूद्ध**- इस प्रकार के संगठन श्रम विभाजन तथा कार्य विशिष्टीकरण के विरूद्ध होते है।
- **निम्न स्तर के स्थानीय कार्यो की उपेक्षा**- इस प्रकार के संगठन मे निम्न स्तर के स्थानीय कार्यो की उपेक्षा लगती है। इसमें व्यक्ति अपने संगठन के बाहर की बात नही सोच पाता और उसका पूरा ध्यान अपने विभाग और उसके कार्यक्रमों तक ही सीमित रहता है।
- **कार्यो का बंटवारा**- इस प्रकार के संगठन मे अक्सर कार्यो मे दोहराव हो जाता है। उदाहरण के लिए रक्षा विभाग भी अस्पताल बनवाता है तो रेलवे विभाग भी अस्पताल बनवाता है।
- **विभाग जनता के नियंत्रण से दूर**- इस प्रकार के संगठन मे विभाग जनता के नियंत्रण से दूर रहते है।

प्रक्रिया (Process)

प्रशासकीय विभागों को संगठित करने का एक आधार 'प्रक्रिया' हो सकती है। प्रक्रिया से तात्पर्य है एक विशिष्ट प्रकार के कार्य करने की तकनीकी विधि। अन्य शब्दों में, प्रक्रिया का अर्थ एक तकनीक अथवा प्रमुख योग्यता से है जो बहुत-कुछ विशेषीकृत होती है। उदाहरण- इन्जीनियरिंग, डॉक्टरी, सांख्यिकी, लेखांकन, कानूनी सलाह तथा स्टेनोग्राफी आदि को हम प्रक्रिया कह सकते है। प्रक्रिया जब संगठन का आधार बनती है तो इसमें प्रक्रिया की एकता को महत्व दिया जाता है। चिकित्सक चाहे वे रक्षा विभाग में हो या गृह मंत्रालय मे या अन्य विभाग में वे प्रक्रिया पर आधारित संगठन मे स्वास्थ्य विभाग के प्रत्यक्ष नियंत्रण मे ही रखे जाते है। यहां यह उल्लेखनीय है कि केवल अधिक महत्वपूर्ण प्रक्रिया या व्यावसायिक योग्यता को ही अलग विभाग के निर्माण का आधार बनाया जाता है। गौण एवं कम महत्व की प्रक्रिया को विभाग के संगठन का आधार नही बनाया जाता है। **लूथर गुलिक** ने लिखा है कि इस प्रकार के संगठन मे एक-सी योग्यता अथवा तकनीक के काम मे लाने वाले या एक ही व्यवसाय के सदस्यों को मिलाकर एक विभाग बना दिया जाता है। किन्तु गौण मान्यताओं, जैसे- टाइपिंग आदि के आधार पर विभाग नही बनाया जाता है।

संगठन के प्रक्रिया आधार के पक्ष के तर्क- संगठन के प्रक्रिया आधार के पक्ष मे निम्न तर्क दिये जाते है-

- **प्रयोगशालाओ का उपयोग संभव**- प्रक्रिया के आधार पर संगठन का निर्माण किये जाने से तकनीकी प्रविधियों एवं प्रयोगशालाओं का उपयोग सम्भव है।
- **तकनीकी क्षेत्र में समन्वय**- इस प्रकार के संगठन मे एकाकी योग्यता अथवा तकनीक को काम मे लाने वाले व्यक्तियों को एक ही विभाग के अधीन लाया जाता है, फलतः उनमें समन्वय बढ़ता है।
- **कार्यकुशलता मे वृद्धि**- ऐसे संगठनों मे श्रम-विभाजन तथा कार्य-विशिष्टीकरण के फलस्वरूप कार्यकुशलता मे वृद्धि होती है।
- **कार्यो मे दोहराव का न होना**- इस प्रकार के संगठन मे कार्यो मे दोहराव नही होता है, इससे अपव्यय नही होता है।

विपक्ष मे तर्क- संगठन के प्रक्रिया आधार के विपक्ष मे निम्नलिखित तर्क दिये जाते है-

- **कार्य सम्पन्न होने मे विलम्ब तथा असुविधा**- प्रक्रिया पर आधारित संगठन में कार्य में बड़ी असुविधा हो सकती है। चिकित्सा विभाग मे यदि सांख्यिकी की आवश्यकता होती है तो पहले सांख्यिकी विभाग को बताना पडेगा। इस प्रकार कार्य सम्पन्न होने में विलम्ब होगा।
- **उत्तरदायित्व निश्चित करना कठिन**- इस प्रकार के संगठन मे यह आशंका रहती है कि प्रक्रिया वाले विभाग अन्य विभागो से सहयोग न करे। यदि रक्षा विभाग को सूचना, जन निर्माण, स्वास्थ्य आदि पर अपने कार्यक्रम के लिए निर्भर रहना पडे तो रक्षा विभाग के कार्यक्रमों की सफलता अन्य विभागों के सहयोग पर निर्भर रहेगी। अन्य विभाग कहां तक सहयोग करेगा यह उत्तरदायित्व निश्चित करना कठिन है।
- **संकुचित दृष्टिकोण**- प्रक्रिया पर आधारित संगठनों में विशिष्टीकरण को महत्व दिये जाने के कारण संकुचित दृष्टिकोण पनपता है।
- **अनुपयुक्त**- केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारो के सभी कार्यो प्रक्रिया के आधार पर संगठित नही किये जा सकते है।
- **विभागों के विशेषज्ञों मे अहं भावना**- प्रक्रिया के आधार पर बनाये गये विभागों मे तकनीकी विशेषज्ञ लोकतान्त्रिक के अधीन कार्य करने मे अपना अपमान समझते है और उनमें अपनी तकनीकी विशेषता के कारण अहं की भावना रहती है।
- **सुयोग्य नेतृत्व का अभाव**- प्रक्रिया आधार पर निर्मित विभागों मे कई बार सुयोग्य नेतृत्व नही मिल पाता है, क्योकि उनमें प्रशासनिक क्षमता कम होती है, वे मान्य विशेषज्ञ ही होते है।

व्यक्ति (Person)

प्रशासकीय संगठन का एक आधार वे व्यक्ति हो सकते है जिनकी सेवा की जा रही है। इस पद्धति के अंतर्गत किसी वर्ग विशेष के सदस्यों की समस्याओं का समाधान करने के लिए प्रशासकीय विभाग का संगठन किया जाता है। उदाहरण, भारत सरकार का पुनर्वास विभाग। यह विभाग पाकिस्तान व बंगलादेश से आये हुए शरणार्थियों की समस्याओं का अध्ययन कर उनके लिए कार्य करता है। इसी प्रकार समाज कल्याण विभाग तथा श्रम कल्याण विभाग कार्य विशेष के सदस्यों की लगभग प्रत्येक समस्या पर विचार करता है और उसका हल खोजने का प्रयास करता है। ऐसे विभागे का प्रमुख लक्षण यह होता है कि ये जिस व्यक्ति समूह की सेवा करते है उनकी समस्त अथवा अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति का ध्यान रखते है।

संगठन के व्यक्ति आधार के पक्ष में तर्क- संगठन के व्यक्ति आधार के पक्ष में निम्न तर्क दिये जाते है-

- **अत्यधिक समन्वय**- इसमें एक वर्ग के लिए प्रदान की जाने वाली सेवाएं एक ही विभाग के अधीन होने से उनमें अत्यधिक समन्वय बना रहता है।

- **लोगो को ज्यादा भाग-दौड़ नही**- इस वर्ग मे लोगों को अपनी समस्याओं के हल के लिए विभिन्न विभागों मे भाग-दौड़ नही करनी पड़ती है। वे एक ही विभाग से सम्पर्क कर अपनी समस्याओं को हल करवा सकते है।
- **सभी के लिए लाभकारी**- यह संगठन उन दशाओ मे अधिक लाभकारी सिद्ध होता है, जहां लोग इतने प्रगतिशील नही कि कोई सरकारी विभागों से आसानी से सम्पर्क स्थापित कर सके। इस प्रकार यह पद्धति सभी लोगों के लिए लाभकारी है।
- **सेव्य समुदायों की समस्याओ को ज्यादा अच्छी तरह समझना**- इस संगठन के अंतर्गत एक ही सेव्य समुदाय अथवा सामग्री के सम्पर्क मे विभाग आता है। इसलिए वह उस सेव्य समुदाय की समस्याओं को ज्यादा अच्छी तरह समझ सकता है। ऐसे विभाग अपने-अपने क्षेत्र मे विशेष दक्षता प्राप्त कर लेते है।

विपक्ष मे तर्क- संगठन के व्यक्ति आधार के विपक्ष मे निम्नलिखित तर्क दिये जाते है-

- **विभागों की स्थापना सब जगह नही**- इस प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यही है कि इस प्रकार के विभाग सब जगह स्थापित नही किये जा सकते, क्योकि इस आधार पर अनेक छोटे-छोटे विभाग स्थापित हो जायेगे।
- **अधिक राजनीतिक दबाव**- सेव्य समुदाय के आधार पर बने संगठन मे राजनीतिक दबाव बहुत अधिक बढ़ जाता है, क्योकि ये संगठन अधिकाधिक अनुग्रह पाने की चेष्टा करते है।
- **विशेषज्ञता को उचित स्थान नही**- यह संगठन विशेषज्ञता को उचित स्थान नही देता है।
- **कर्मचारियों मे योग्यता का अभाव**- इस प्रकार के संगठित विभागों मे कर्मचारियों मे योग्यता व दक्षता का अभाव रहता है क्योकि उनका केवल वर्ग विशेष की समस्याओं से संबंध रहता है। ये विविध कार्यो से परिचित हो जाते है, किन्तु ये किसी कार्य मे दक्ष नही रहते है।

क्षेत्र या स्थान (Area or Place)

क्षेत्र या प्रदेश के आधार पर संगठित विभाग मे ऐसे सभी लोग जो एक ही क्षेत्र मे कार्य करते है, वे एक ही विभाग मे ले लिये जाते है और ये लोग क्षेत्र विशेष के लोगो की अनेक समस्याओं के समाधान में जुट जाते है। भारत मे दामोदर घाटी विकास निगम, उत्तरी-पूर्वी भारत सीमान्त एजेन्सी, विदेश विभाग मे उप-विभागों का संगठन इसी आधार पर हुआ है। इसी प्रकार जिला प्रशासन, पंचायत समिति, जिला परिषद तथा ग्राम पंचायत क्षेत्रीय आधार पर ही लोगों की समस्याओं का समाधान करने में संलग्न है।

संगठन के क्षेत्र या स्थान आधार के पक्ष मे तर्क- संगठन के क्षेत्र या स्थान आधार के पक्ष मे निम्न तर्क दिये जाते है-

- ऐसा संगठन किसी क्षेत्र विशेष के विकास कार्य मे ही उपयोगी होता है।
- ऐसे संगठन मे समन्वय मे सुविधा होती है।
- ऐसे संगठनों मे कार्यक्रम और योजनाओं को क्षेत्र की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित करने की सुविधा होती है।
- ऐसे संगठनों मे यात्रा, दौरे तथा पत्र-व्यवहार मे होने वाले आवश्यक खर्चे कम हो जाते है।
- क्षेत्रीय संगठनों के कर्मचारी स्थानीय परिस्थितियों से अच्छी तरह परिचित होते है अत: कार्यक्रम को जनता की सुविधा की दृष्टि से चलाते है। इससे सरकार तथा जनता से अच्छा सम्पर्क स्थापित होता है।

विपक्ष मे तर्क- संगठन के स्थान के आधार के विपक्ष मे निम्नलिखित तर्क दिये जाते है-

- ऐसे संगठनों द्वारा क्षेत्रीयता की भावना को प्रोत्साहन मिलता है, जिससे संकीर्णता की भावना जन्म लेती है।
- इस पद्धति द्वारा श्रम-विभाजन और विशेषीकरण के लाभ प्राप्त नही किये जा सकते।
- ऐसे संगठनों मे राजनीतिक दबाव अन्य संगठनों की अपेक्षा अधिक होता है।
- ऐसे संगठनो मे कई बार इन विभागों की नीतियों से प्रशासन की एकरूपता के मार्ग मे बाधा उत्पन्न होती है।

निष्कर्षत: उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्रशासकीय संगठन के अंतर्गत कार्य का विभाजन ओर संयोजन इन चारों आधारो पर किया जा सकता है। जहां तक किसी उपयुक्त आधार का सवाल है तो इसका कोई निश्चित उत्तर नही दिया जा सकता है। संगठनकर्ता समय और परिस्थितियों के अनुसार किसी भी आधार पर संगठन का निर्माण कर सकता है। वस्तुत: संगठन के सभी चारों आधारों का एक-दूसरे से घनिष्ठ संबंध है। यही कारण है कि प्रत्येक प्रशासन मे संगठन के उपर्युक्त चारों ही आधार मिश्रित रूप में पाये जाते है। संयुक्त राज्य अमेरिका के कांग्रेस की एक समिति के सामने अपनी राय व्यक्त करते हुए बुक्रिंग्स ने ठीक ही कहा था कि, ''कोई एक तत्व या आधार संगठन का निर्णायक तत्व नही हो सकता। एक तत्व हमें एक स्थान या एक स्थिति में निर्णय करने मे मदद दे सकता है, जबकि अन्य स्थान में दूसरा तत्व अधिक मदद दे सकता है। हर स्थिति मे एक निर्धारक तत्व को दूसरे के विरूद्ध कर लेना चाहिए। कुछ कार्यो व अभिकरणों के लिए सम्भवत: कोई भी तत्व (संगठन के आधार के लिए) श्रेष्ठ सिद्ध नही हो सके। अत: हमें एक समान वांछनीय विकल्पों मे से चयन करना चाहिए।''

संगठन के सिद्धांत (Theories of Organisation)

विभिन्न विद्वानों द्वारा संगठन के जो विभिन्न सिद्धांत बतलाए है, इनमे से प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित है-

संगठन का शास्त्रीय सिद्धांत (The Classical Theory of Ogranisation)

संगठन के शास्त्रीय सिद्धांत को 'परम्परावादी विचारधारा', 'यान्त्रिक विचारधारा', 'औपचारिक विचारधारा' या 'संरचनात्मक सिद्धांत' के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धांत के प्रमुख समर्थकों मे हेनरी फेयॉल, लूथर गुलिक, मूने, उर्विक तथा आर. शैल्टन आदि प्रमुख है। इस सिद्धांत या विचारधारा का मानना है कि संगठन का अर्थ है- एक औपचारिक ढाँचा जिसकी रचना विशेषज्ञों द्वारा स्पष्ट सिद्धांतों, नियमों और उप-नियमों के आधार पर की जाती है। इन विचारकों के मतानुसार संगठन मूलत: एक औपचारिक संरचना अथवा योजना है तथा कुछ पूर्व निश्चित सिद्धातों की सहायता से विशेषज्ञ इस योजना का निर्माण ठीक उसी प्रकार कर सकते है, जिस प्रकार कोई वास्तुकार, वास्तुकला के सिद्धांतों की सहायता से किसी भवन की योजना बनाता है। इस विचारधारा की मान्यता है कि संगठन के मौलिक सिद्धांत अथवा आदर्श इतने सर्वविदित है कि किसी प्रकार के कार्य की आवश्यकताओं के अनुरूप योजना बनाना विशेषज्ञो के लिए सम्भव है,

तथा स्टाफ की नियुक्ति करने से पहले संगठन की योजना पर विचार किया जाना जाहिए। योजना बनाते समय यह ध्यान रखना होता है कि मुख्य बात संगठन का रूप एवं उसका ढाँचा है तथा संगठन मे कार्य करने वाले व्यक्ति गौण है।

यह विचारधारा संगठन को उसी इंजीनियर से पूर्णत: प्रभावित मानती है जो वैज्ञानिकता व सुनिश्चितता पर अधिक ध्यान देता है, रचना को तार्किक आधार पर करना चाहता है तथा उसकी यह इच्छा होती है कि संगठन द्वारा उठाया जाने वाला प्रत्येक कदम सर्वोत्तम होना चाहिए। इस प्रकार के संगठन मे उन कार्यो पर अधिक बल दिया जाता है जिनसे आशा की जाती है संगठन कुशल एवं प्रभावी बन सकेगा। संगठन के विषय में महत्वपूर्ण बात यह है कि सही व्यक्तियों को सही स्थान पर लगाया जाए। इस तरह इस विचारधारा मे संरचना के विभिन्न संबंधों की समस्याओं पर विशेष बल दिया जाता है। इसमें मानव तत्व को महत्व नही दिया जाता है और इसके प्रमुख लक्षण है- अवैयक्तिकता, लोचशीलता, कार्य-विभाजन, पदसोपान एवं दक्षता।

संगठन के शास्त्रीय सिद्धांत के प्रबल समर्थक हेरनी फॅयॉल ने संगठन के 14 सिद्धांतो का उल्लेख किया है- कार्य-विभाजन, अधिकार एव उत्तरदायित्व, अनुशासन, आदेश की एकता, निर्देश की एकता, सामान्य हित को प्राथमिकता, उचित परिश्रमिक, केन्द्रीयकरण, पद-सोपान क्रम, व्यवस्था, समता, कर्मचारियो क पदो की स्थिरता, प्रेरणा तथा सहयोग की भावना। उर्विक ने संगठन के आठ सिद्धांत बतलाये है-

- उद्देश्य का सिद्धांत।
- अनुरूपता का सिद्धांत।
- उत्तरदयित्व का सिद्धांत।
- व्याख्या का सिद्धांत।
- नियंत्रण के क्षेत्र का सिद्धांत।
- विशिष्टीकरण का सिद्धांत।
- समन्वय का सिद्धांत।
- निर्धारण का सिद्धांत।

लूथर गुलिक ने संगठन के दस सिद्धांत बतलाये है-

- कार्य-विभाजन या विशिष्टीकरण।
- विभागीय संगठनो के आधार।
- पदसोपान द्वारा समन्वय।
- सोद्देश्य समन्वय।
- समितियों के अंतर्गत समन्वय।
- विकेन्द्रीकरण।
- आदेश की एकता।
- स्टाफ तथा सूत्र।
- प्रयोजन।
- नियंत्रण का क्षेत्र।

शास्त्रीय विचारकों का पक्का विश्वास था कि प्रशासकों के अनुभवों तथा कुछ सिद्धांतों के आधार पर प्रशासन का एक विज्ञान विकसित किया जा सकता है। इस प्रकार अब तक कला के रूप में विकसित समझा जाने वाला प्रशासन एक विज्ञान के रूप में विकसित हुआ।

हरबर्ट साइमन ने शास्त्रीय संगठन की कटु आलोचना की है। वे कहते है कि शास्त्रीय सिद्धांत से यह स्पष्ट नही होता कि किस विशेष स्थिति मे कौन-सा सिद्धांत महत्व देने योग्य है। **सुब्रह्मण्यम** ने कहा कि सभी शास्त्रीय विचारकों का अपने सिद्धांतों में प्रबंध की ओर झुकाव प्रदर्शित होता है। ये केवल प्रबंध की समस्याओं के विषय में चिन्तित थे, न कि प्रबंध तथा व्यक्तियों से संबंधित अन्य संगठनात्मक समस्याओं के विषय मे। इस सिद्धांत को व्यक्तिपरक कह कर भी इसकी आलोचना की गई है। इस सिद्धांत मे मानव तत्व तथा मानव व्यवहार को कम महत्व दिया है।

संगठन के महत्व (Importance Of Organistaion)

अच्छा संगठन ही अच्छे प्रबंधन की नींव है। सुदृढ़ संगठन उपक्रम को सफलतापूर्वक चलाने मे महान योगदान दे सकता है। संगठन ही तो वह साधन है जिसके माध्यम से प्रबंधक अपने अधीनस्थों का निर्देशन, नियंत्रण एवं समन्वयन करता है। संक्षेप मे अच्छे संगठन के निम्न लाभ है-

प्रबंधन क्षमता में वृद्धि (Increase Managerial Efficiency)

अच्छा एवं संतुलित संगठन प्रबंधकों की कार्यक्षमता में कई प्रकार से वृद्धि कर सकता है। इसमें कार्यो के निष्पादन मे लगने वाले समय मे मितव्ययिता लाई जा सकती है, कार्यो के दोहराव को रोका जा सकता है तथा आपसी मतभेद समाप्त हो जाते है। इन सबके परिणामस्वरूप प्रबंधकीय क्षमता मे वृद्धि होना स्वाभाविक ही है।

अधिकार प्रत्यायोजन मे सुविधा (Facilitates Delegation)

एक अच्छे संगठन में अधिकारों का प्रत्यायोजन बहुत ही आसानी से किया जा सकता है। संगठन चार्ट से अधिकारी को यह ज्ञात हो जाता है कि कौन-कौन व्यक्ति उसके अधीनस्थ है तथा कौन व्यक्ति किस कार्य को करने में विशिष्ट है। इससे अधिकारी संबंधित व्यक्ति को संबंधित कार्य एवं अधिकार दे सकता है।

संस्था के विकास एवं उन्नति मे सहायक (Faeilitates Growth And Deversification)

एक अच्छे संगठन का लाभ यह भी है कि वह संस्था के विकास एवं उन्नति मे सहायक है। जितना अधिक विस्तृत संगठन होगा, उसमें विकास एवं उन्नति के उतने ही अधिक अवसर होंगे।

तकनीकी सुधारों का अधिकतम प्रयोग (Provides For Optimum Use Of Technological Improvements)

एक अच्छा एवं सन्तुलित संगठन तकनीकी सुधारों का सर्वाधिक अवसर प्रदान करता है। नये तकनीकी विकास संगठन संरचना को बहुत अधिक प्रभावित करते है तथा इन नये तत्वों को स्थान देने के लिए सर्वोच्च प्रकार के संगठन प्रारूपों की आवश्यकता है।

मनुष्यों के मानवीय व्यवहार को प्रोत्साहन (Encourages Human Behaviour In Human Beings)

संगठन संरचना संस्था के कार्य करने वाले लोगों को भी एक सीमा एक प्रभावित करती है। एक अच्छा संगठन लोगों को साथ-साथ कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करता है और एक मानव से दूसरे मानव के प्रति मानवीय व्यवहार करने का अवसर प्रदान करता है।

सृजनशीलता को प्रोत्साहन (Stimlates Creativity)

अच्छे संगठन में स्वतंत्र एवं सृजनशील विचारों का जन्म होता है तथा लोगों मे कार्य करने की पहल शक्ति आती है इसका कारण यह है कि संगठन में लोगों को अपने अधिकारों एवं अपने कर्तव्यों से भली प्रकार अवगत करवा दिया जाता है तथा वे आधुनिकतम विधियों से अपने अधिकारों मे रहकर पूरा करने के लिए स्वतंत्र होते है।

मनोबल मे वृद्धि (Contributes Of Morale)

अच्छा संगठन कर्मचारियों के मनोबल मे भी वृद्धि करता है। प्रत्येक व्यक्ति के कार्य एवं अधिकार निश्चित होने से उनकों अपने अस्तित्व का ज्ञान हो जाता है, जो अंततोगत्वा मनोबल की वृद्धि करने मे सहायक है। ''उत्तरदायित्वों एवं सबंधों की भली प्रकार व्याख्या हो जाने से नीतियों एवं उद्देश्यों को भली प्रकार समझा जा सका है। यह कर्मचारियों में हिस्सेदारी एवं सहयोग की भावना तथा कार्य की इच्छा प्रदान करती है।'' फलत: कर्मचारियों का मनोबल बढ़ जाता है।

विशिष्टिकरण को प्रोत्साहन (Encourages Specialization)

संगठन संरचना के आधार पर कार्य-विश्लेषण करके सही व्यक्ति को सही कार्य पर लगाया जा सकता है। विशिष्ट योग्यता वाले व्यक्ति को विशिष्ट कार्य दिया जाता है। इससे विशिष्टिकरण को प्रोत्साहन मिलता है।

कर्मचारियों के आवागमन में कमी (Decreases Employees Turnover)

संगठन संरचना का एक महत्वपूर्ण लाभ यह भी है कि अच्छे संगठन मे कर्मचारियों का आवागमन कम हो जाता है। निश्चित कार्यो एवं उद्देश्यों तथा वैयक्तिक मान्य (Personal Recognition) से प्रत्येक कर्मचारी खुश रहता है। अत: ऐसे कर्मचारी को संगठन सामान्यत: छोड़ता नही है। इससे श्रमिकों के आवागमन मे कमी हो जाती है।

समन्वय मे सुविधा (Facilitates Coordination)

विशिष्टिकरण के परिणामस्वप समन्वय की समस्या का जन्म होता है। संगठन संरचना के विभिन्न विभागों एवं उप-विभागों, कर्मचारियों एवं अधिकारियों के मध्य आपसी संबंधों का निर्धारण कर दियाा जाता है। इससे समन्वय में सुविधा रहती है।

कार्यक्षेत्र का स्पष्ट विभाजन (Clear-cut Division For Area)

संगठन सरंचना से प्रत्येक कर्मचारी एवं अधिकारी के कार्य क्षेत्र की सीमा का स्पष्ट निर्धारण हो जाता है। इससे एक-दूसरे के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं हो पाता है और आपसी मधुर संबंधों का निर्माण संभव है।

नियंत्रण में सुविधा (Facilitates Control)

प्रत्येक अधिकारी एवं कर्मचारी के कार्य क्षेत्र के निर्धारण के बाद उसके कार्यो के नियंत्रण की समस्या उपस्थित होती है। यह समस्या भी अच्छी संगठन संरचना से आसानी से हल की जा सकती है।

कार्यकुशलता मे वृद्धि (Increases Efficiency)

निश्चित उद्देश्यों, कार्यो, दायित्वों एवं आपसी संबंधों से अधिकारियों एवं कर्मचारियों की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। इससे ही अंततोगत्वा सम्पूर्ण संस्था की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।

भ्रष्टाचार की समाप्ति (Eradicates Corruption)

एक अच्छा संगठन अपने कर्मचारियों को परिश्रमी, निष्ठावान एवं उच्च पारिश्रमिक गुणों वाला बनाने में सहायता प्रदान करता है। संगठन में प्रत्येक व्यक्ति का कार्य व्यवस्थित ढंग से निर्धारित किया जाता है तथा उनका पारिश्रमिक आदि भी उचित रूप से निश्चित किया जाता है। अत: ऐसे संगठन के कर्मचारियों में भ्रष्टाचार फैलने की संभावना कम हो जाती है। यदि कभी कोई ऐसी स्थिति का संदेह होता है तो उस स्थिति से निपटने के लिए भी उचित स्तर पर प्रयास बहुत ही आसानी से किए जा जाती है।

संदेशवाहन में सफलता (Facilitates Communication)

अच्छी संगठन संरचना में पूर्व निश्चित संबंधों के कारण संदेशों का आदान-प्रदान सरल हो जाता है। संदेशों के आदान-प्रदान के प्रबंधन व्यवस्था आसान हो जाती है।

अधिकारों के आधार पर संगठन का वर्गीकरण

अधिकारों के आधार पर संगठन को दो भागों मं बांटा जा सकता है-

- औपचारिक संगठन/संरचात्मक-कार्यात्मक/यांत्रिक संगठन।
- अनौपचारिक संगठन/परछाई संगठन

औपचारिक संगठन (Formal Organisation)

औपचारिक संगठन से आशय एक ऐसे संगठन से है जिसके प्रत्येक स्तर के प्रबंधकों के अधिकारों, कर्तव्यों एवं दायित्वों की स्पष्ट सीमा होती है। ऐसे संगठनों के अधिकारों का प्रत्यायोजन होता है तथा संगठन संरचना संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ही की जाती है। चेस्टर बरनार्ड (Chester Barnard) के शब्दों में, ''जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों की क्रियाओं को किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जान-बूझकर समन्वित किया जाता है तो ऐसे संगठन को औपचारिक संगठन कहते है।''

औपचारिक संगठन प्रत्येक संस्था को स्थायी संगठन होता है। यह संगइन संस्था से प्रत्येक व्यक्ति को कुछ निश्चित विधि से कार्य करने, नियमों का पालन करने तथा दूसरे के साथ रहकर या मिलकर काम करने को बाध्य करता है।

लक्षण

- स्थायित्व- यह जानबूझकर बनाया गया स्थायी संगठन है।
- कानूनी दर्जा- यह अधिकारों के प्रत्यायोजन के आधार पर बनाया जाता है।
- यह पूर्णत: अव्यक्तिगत होता है।
- प्रत्येक स्तर के अधिकारी के अधिकारों, कर्तव्यों एवं स्थिति के बारे में पूर्ण व्याख्या होती है।
- ऐसे संगठन में संगठन चार्टो का प्रयोग किया जाता है।
- इनमें आदेश की एकता का पालन होता है।
- इनमें श्रम विभाजन संभव होता है।

लाभ

औपचारिक संगठनों के प्रमुख लाभ है-

- अधिकारों एवं दायित्वों की स्पष्ट व्याख्या होने से अपासी मतभेद समाप्त हो जाते है।
- कार्यो का दोहराव नहीं होता है।
- विभिन्न व्यक्तियों के बीच दायित्वों मे होने वाले अंतर को समाप्त किया जा सकता है।
- टाल-मटोली (Buck Passing) की भावना का विकास नहीं हो पाता।
- कार्यो के सही प्रमाप निश्चित किए जा सकते है।
- पक्षपात के अवसर समाप्त को जाते है
- इनसे उद्देश्यों को प्राप्त करना सरल होता है।
- ऐसे संगठनों में किसी एक व्यक्ति का अत्यधिक महत्व समाप्त हो जाता है।

दोष

जहां एक औपचारिक संगठन के कुछ लाभ है वहां इसके दोष भी है। प्रमुख दोषों का वर्णन नीचे किया गया है-

- यह संगठन पहलपन की भावना को समाप्त करता है।
- ऐसे संगठनों मे अनावश्यक रूप से अधिकारों का प्रयोग किया जाता है।
- ऐसे संगठनों मे कार्य करने वाले सामान्यत: सामाजिक संगठनों की मान्यताओं एवं भावनाओं को भूल जाते है।
- ऐसे संगठन यंत्रवत होते है, जहां पर नियम मनुष्यों से ज्यादा महत्वपूर्ण होते है।
- यह संगठन अनौपचारिक संदेशवाहन मे बाधा उपस्थित करता है।
- ऐसे संगठन में समन्वय की भी एक भयंकर समस्या होती है।

अनौपचारिक संगठन (Informal Organisation)

औपचारिक संगठन के विपरीत प्रकृति की अनौपचारिक संगठन होता है। अनौपचारिक संगठन का निर्माण व्यक्तिगत संबंधों, व्यक्तिगत संदेशवाहन, सामान्य ज्ञान आदि के आधार पर होता है। बर्नार्ड (Barnard) के अनुसार, ''वह संगठन अनौपचारिक है जिसमें आपसी संबंध अज्ञानवश संयुक्त उद्देश्यों के लिए बनते है।'' अर्ल पी. स्ट्रांग (Earl p. Srtong) के मतानुसार, ''अनौपचारिक संगठन एक एसी सामाजिक संरचना है जिसका निर्माण व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि अनौपचारिक से आशय एक ऐसे संगठन से होता है जिसका निर्माण किसी विशेष उद्देश्य के लिए नहीं किया जाता है बल्कि आपसी व्यक्तिगत संबंधों के आधार पर होता है। अनौपचारिक संगठनों का निर्माण औपचारिक के दोषों को दूर करने के लिए ही हुआ है। औपचारिक सगठनों मनुष्य केवल नियमों की कठपुतली मात्र बन जाता है, उसे नियमों को मानना ही पड़ता है, किन्तु अनौपचारिक संगठनों मे ऐसा नहीं होता है। व्यक्ति स्वतंत्र रूप से अपने व्यक्तिगत संबंधों, इच्छाओं पर इनका निर्माण करता है।

लक्षण

अनौपचारिक संगठनों के प्रमुख लक्षणों का विवेचन निम्न प्रकार है-

- ऐसे संगठन स्वत: बनते है।
- ऐसे संगठन यकायक बनते है, नियोजित ढंग से नही।
- ये सामाजिक संगठन होते है जो व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करते है।
- ऐसे संगठनों का संगठन चार्ट मे कोई स्थान नहीं होता है।
- प्रबंध के सभी स्तरों पर इस प्रकार के संगठन पाए जाते है।
- ऐसे संगठनों की अपनी परम्पराएं एवं नियम होते है जिनका सामान्यत: पालन होता है। यद्यपि नियम लिखित नहीं होते है।
- ऐसे संगठनों का निर्माण सामाजिक समूहों के रीति-रिवाओं, आपसी संबंधों एवं आदतों के द्वारा होता है।

अनौपचारिक संगठन किसी एक सीमा एक औपचारिक संगठन की कार्य कुशलता को प्रभावित करता है। अनौपचारिक संगठन के सदस्य सामान्यत: अपने कुछ प्रमाय निश्चित करते है, सामान्य हितों की खोज करते है तथा आपसी विचार-विमर्श करते है। ऐसे संगठनों के अपने उद्देश्य होते है जो सम्पूर्ण संस्था के लिए अच्छे अथवा बुरे हो सकते है।

लाभ- अनौपचारिक संगठन एक औपचारिक संगठन की कुशलता के लिए परमावश्यक है। जॉसेफ लिटरर (Joseph Litterer) के शब्दों में, ''मानवीय जीवन मे अनौपचारिक संगठनों का महत्वपूर्ण स्थान है तथा ये संपूर्ण संगठन का एक आवश्यक भाग है।'' संक्षेप मे अनौपचारिक संगठनों से प्राप्त होने वाले लाभों का उल्लेख नीचे लिखा गया है-

- ये औपचारिक संगठन की कमियों को दूर करते है।

- ये कर्मचारियों को संतोष प्रदान करते है।
- ये कुशल संदेशवाहन मे योगदान देते है।
- इस प्रकार के संगठन कर्मचारियों मे आपसी संबंधों को दृढ़ करते है।
- ये संगठन संस्था के कर्मचारियों को कार्य के प्रति प्रेरणा प्रदान करते है।
- ऐसे संगठनों के होने पर प्रबंधक सर्तकतापूर्वक प्रबंध करते है।

दोष- ऐसे संगठनों के लाभों के होते हुए भी कुछ दोष निम्नलिखित है-

- ऐसे संगठन कभी-कभी विनाशकारी प्रकृति के होते है। कभी-कभी गलत अफवाहें विनाश का कारण बनती है।
- ऐसे संगठन भीड़ तंत्र को बढ़ावा देते है।
- ऐसे संगठन उत्पादकता वृद्धि की योजनाओं को प्रभावहीन बना देते है।

यद्यपि अनौपचारिक संगठनों के प्रति कई गलत भ्रांतियां है और कहा जाता है कि ये संगठन औपचारिक संगठनों से भिन्न हैं, उनके विरोधी हैं, अत: ऐसे संगठनों को समाप्त कर देना चाहिए। किन्तु वास्तविकता यह है कि औपचारिक संगठनों से प्रबंधकों को अपनी संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति मे बड़ी सहायकता मिलती है। प्रबंधक अनौपचारिक संगठनों के बिना कभी भी कुशलतापूर्वक संगठन नही कर सकते है। अत: एक संस्था के कुशल संचालन मे अनौपचारिक संगठन परमावश्यक है।

औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठनों मे अंतर

डॉ. व्हाइट (White) ने औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठनों के बीच अंतर व्यक्त करते हुए लिखा है, कि ''औपचारिक संगठन अधिक जटिल होते है जो अनेक बातों-जाति एवं भाषा की भिन्नताएं, शैक्षणिक स्तर एवं व्यक्तिगत रूचियां एवं अरूचियों आदि को प्रतिबिंबित करता करता है। यह रीति-रिवाजो पर आधारित है तथा कानून द्वारा प्रावर्तित नहीं कराया जा सकता है। यह लिखित भी नहीं होता है और इसे स्वच्छ रेखाचित्रों द्वारा भी प्रदर्शित नहीं किया जा सकता है। औपचारिक संगठन की प्रवृत्ति विवेकशील एवं अव्यक्तिगत बनने की होती है, जबकि औपचारिक संगठन की प्रवृत्ति भावात्मक एवं वैयक्तिक होती है। प्राय: ये दोनों एक दूसरे की समेट लेते है, एक दूसरे से संबंन्धित हो सकते है या बहुत दूर-दूर भी हो सकते है।''

मेन्सफील्ड एवं मार्क्स (Mansfield and Marks) ने औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन के बीच संक्षेप में अंतर स्पष्ट किया है। उनके अनुसार ''मुख्य अंतर अधिकार एवं प्रभाव का ही अंतर है।'' अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से औपचारिक एवं अनौपचारिक संगइन में अंतर को नीचे दी गई तालिका मे प्रस्तुत करते है-

अन्तर का आधार	औपचारिक संगठन	अनौपचारिक संगठन
उत्पत्ति	इसकी उत्पत्ति अधिकारों के प्रत्यायोजन करने से होती है।	इसकी उत्पत्ति व्यक्तियों के आपसी सामाजिक संबंधों के परिणामस्वरूप होती है।
आधार	इसका आधार अधिकार एवं कार्य है।	इसका आधार व्यक्ति एवं उसके आपसी संबंध है।
निर्माण	इसका निर्माण योजनाबद्ध किया जाता है।	इसका निर्माण स्वत: होता है।
अधिकार	ऐसे संगठन मे स्थिति के साथ औपचारिक अधिकार रहते है।	ऐसे संगठनों मे व्यक्तियों के साथ अनौपचारिक अधिकार रहते है।
लिखित अधिकार एवं कर्तव्य	ऐसे संगठन के नियम अधिकार, दायित्व आदि सभी लिखित रूप में होते है।	ऐसे संगठनों के नियम लिखित रूप में नहीं होते है।
अधिकारों की दशा	ऐसे संगठन मे अधिकार ऊपर से नीचे की ओर चलते है।	ऐसे संगठनों मे अनौपचारिक अधिकार नीचे से ऊपर की ओर या समतल पर चलते है।
आकार	औपचारिक संगठनों का आकार असीमित रूप से बड़ा हो सकता है।	अनौपचारिक संगठन प्राय: छोटे ही रहते है।
उद्देश्य	औपचारिक संगठन तकनीकी उद्देश्यों से प्रेरित होते है।	ऐसे संगठन का उद्देश्य सामाजिक संतुष्टि प्राप्त करना होता है।
स्थायित्व	ऐसे संगठन स्थायी एवं दीर्घकालीन होते है।	ऐसे संगठन अपेक्षाकृत कम स्थिर होते है।
आवश्यकता	किसी संस्था के लिए इस प्रकार के संगठन का निर्माण करना अत्यावश्यक है।	ऐसे संगठन का निर्माण करना अत्यावश्यक नहीं होता है।
स्थिति	इस संगठनों की स्थिति का आदर्श रूप होता है।	इसमें स्थिति का वास्तविक रूप होता है।

नियुक्तिकरण (Staffing)

सांगठनिक ढांचे के नियोजन और चुनाव के उपरान्त प्रबंधन प्रक्रिया का अगला चरण संगठन में रिक्त पदों को भरना हैं, इसे प्रबंधन का कार्मिक फलन (नियुक्तिकरण) कहते हैं।

नियुक्तिकरण का अर्थ लोगों को कार्यरत करना है। यह कार्यबल नियोजन से प्रारम्भ होता है तथा इसमें अन्य कार्य जैसे-भर्ती, चयन, प्रशिक्षण विकास, पदोन्नति, क्षतिपूर्ति एवं कार्यबल निष्पादन मूल्यांकन (आंकलन) सम्मिलित हैं। दूसरों शब्दों में नियुक्तिकरण प्रबंधन प्रक्रिया का वह भाग है जो संतुष्ट एवं संतुष्ट करने वाले कार्यबल के प्राप्तिकरण, उपयोग एवं रखरखाव से संबंधित हैं। वर्तमान में, नियुक्तिकरण के अंतर्गत कर्मचारियों के संयोजन में दैनिक श्रमिक, सलाहकार एवं अनुबंधित कर्मचारियों को सम्मिलित किया जा सकता हैं। नियुक्तिकरण किसी संगठन द्वारा नियुक्त किए गए प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से मान्यता प्रदान करता है, जो कि अंतत: कार्य निष्पादित करता है। व्यावसायिक संगठन में नियुक्तिकरण को भर्ती करने एवं कर्मचारियों की संख्या पूर्ण रखने से संबंधित प्रबंधकीय कार्य करने के रूप में वर्णित किया जा सकता हैं।

इस लक्ष्य की प्राप्ति सर्वप्रथम श्रम-शक्ति की आवश्यकता को पहचानकर साथ ही साथ भर्ती, चुनाव प्रतिनियुक्ति, पदोन्नति, मूल्य-निर्धारण और व्यक्तिगत विकास के द्वारा व्यावसायिक संगठनों द्वारा अभिकल्पित भूमिकाओं की पूर्ति हेतु की जा सकती हैं। एक नए उद्यम में, नियुक्तिकरण प्रक्रिया, नियोजन तथा सांगठनिक प्रक्रियाओं को निष्पादित करती हैं। यह निर्णय करने के बाद कि क्या क्रियाएं करनी चाहिए? इन्हें कैसे निष्पादित किया जाएगा? सांगठनिक संरचना बनाने के उपरांत प्रबंधक यह जानने की स्थिति में होते हैं कि संगठन के विभिन्न स्तरों पर किस मानव संसाधनों की आवश्यकता हैं? एक बार जब संख्या तथा किसी प्रकार के कर्मचारियों का चयन निर्धारित हो जाता है तब प्रबंधक भर्ती, चयन या कर्मचारियों के प्रशिक्षण से संबंधित क्रियाएं प्रारंभ करता है ताकि संगठन की नियुक्तिकरण आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। एक पूर्वस्थापित उद्यम में नियुक्तिकरण एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया हैं क्योंकि नए कार्य सृजन किए जा सकते हैं तथा कुछ कार्य कर्मचारी संगठन छोडकर भी जा सकते हैं।

नियुक्तिकरण की आवश्यकता तथा महत्व

किसी भी संस्था में कार्य निष्पादन हेतु कर्मचारियों की आवश्यकता होती हैं। प्रबंधन की नियुक्तिकरण प्रक्रिया इन आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं तथा **सही पदों के लिए सही व्यक्तियों का प्रबंध करती हैं।** आधारभूत रूप से सांगठनिक संरचना में नियुक्तिकरण रिक्त पदों की पूर्ति करता है क्योंकि उपयुक्त नियुक्ति करते समय योग्य कर्मचारियों का चयन होना चाहिए, इसलिए तत्व अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। कर्मचारियों का चयन करते समय नियुक्तिकरण मानवीय तत्वों तथा मूल प्रकृति/सहजता प्रदान करता है संगठन अभिवृत्ति योजना, वचनबद्धता, निष्ठा जैसे महत्वपूर्ण गुणों को ध्यान में रखती है। इसे एक विशिष्ट क्षेत्र भी माना गया है तथा इस विषय पर विस्तृत ज्ञान संबंधी सिद्धांत उपलब्ध हैं। बेहतर परिणाम के लिए नियुक्तिकरण के विभिन्न पक्षों जैसे-आवश्यकता, चयन, क्षतिपूर्ति तथा प्रलोभन, प्रशिक्षण तथा विकास पर किए गए अनुसंधानों का प्रयोग किया जा सकता हैं।

मानव संसाधन किसी भी व्यवसाय की आधारशिला है। योग्य व्यक्ति व्यवसाय को सर्वोच्च शिखर तक पहुंचा सकते हैं, गलत व्यक्ति व्यवसाय को गर्त में पहुचा सकते हैं। अत: नियुक्तिकरण सांगठनिक निष्पति की अत्यंत आधारभूत तथा अलोचनात्मक प्रवृत्ति है। आज के तीव्र तकनीकी विकास के समय में संगठन के बढते आकार तथा व्यक्तियों के व्यवहार की जटिलता को देखते हुए नियुक्तिकरण प्रक्रिया का महत्व ओर अधिक बढ गया है। मानव संसाधन किसी भी संगठन की एक अत्यंत महत्वपूर्ण परिसंपत्ति हैं। किसी भी संस्था के लक्ष्यों की पूर्ति उसके मानवीय संसाधनों की गुणवत्ता पर निर्भर करती हैं। इसलिए नियुक्तिकरण एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रबंधकीय प्रक्रिया है। कोई भी संस्था सफल नहीं हो सकती यदि वह अपने सांगठनिक संरचना में विभिन्न पदों पर सही कर्मचारियों की नियुक्ति कर पाने में समर्थ न हो।

उपर्युक्त नियुक्तिकरण संगठन को निम्न लाभ के लिए आश्वस्त करता है-

(क) विभिन्न पदों के लिए योग्य कर्मचारियों को खोजने में सहायता करता हैं।
(ख) प्रबंधकों द्वारा उत्तरोत्तर नियोजन द्वारा संस्था के निरंतर विद्यमान रहने में तथा उसके विकास के लिए आश्वस्त करता है।
(ग) उपयुक्त व्यक्तियों के उपयुक्त पदों पर नियुक्ति के कार्य का बेहतर निष्पादन होता हैं।
(घ) मानव संसाधनों के सर्वोत्तम उपयोग के लिए आश्वस्त करता हैं। आवश्यकता से अधिक कर्मचारियों को रखने से बचाव कर कर्मचारियों के कम उपयोग तथा उच्च श्रम लागत को रोकने में सहायक हैं।
(ड) उद्देश्यपूर्ण मूल्यांकन तथा कर्मचारियों के योगदान का न्यायोचित प्रतिफल के द्वारा कार्य-संतोष में सुधार करता है तथा कर्मचारियों का मनोबल बढाता हैं।

नियुक्तिकरण के तीन मुख्य पक्ष हैं-

(1) भर्ती
(2) चयन
(3) प्रशिक्षण

नियुक्तिकरण की प्रक्रिया

प्रबंध की प्रक्रिया में नियुक्तिकरण प्रक्रिया का प्रथम कार्य संगठन में कार्य-शक्ति की आवश्यकताओं को समय पर करना हैं। ये आवश्यकताएं प्रासंगिक भी हो सकती है, जैसे नए उद्यम प्रारम्भ करने के समय अथवा स्थापित उद्यम के विस्तृतीकरण के लिए या फिर यह उस समय भी उत्पन्न हो सकती हैं जब कोई व्यक्ति/कर्मचारी संस्था छोड कर जाता हैं, सेवानिवृत्त होता है अथवा उसकी पदोन्नति या स्थानांतरण होता है अथवा उन्हें नौकरी से निकाल दिया जाता हैं। किसी भी स्थिति से सही पदों पर सही व्यक्तियों की आवश्यकता के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। परन्तु ठीक उसी मुहावरे की तरह कि 'सब जगह पानी ही पानी है परन्तु पीने के पानी की एक बूंद भी नहीं है' इस तथ्य को उभारता है कि पृथ्वी के 2/3 भाग पर जल होने के बाद भी, पीने योग्य पानी एक दुर्लभ पदार्थ है, **'सही पद के लिए सही कर्मचारियों को खोजना'** पर भी यह लागू होता हैं।

ऐसे में यह आवयश्यक है कि नियुक्तिकरण को एक महत्वपूर्ण क्रिया के रूप में समझने की, जो कार्य-शक्ति की आवश्यकताओं को समझने से प्रारम्भ होती हैं चाहे वह संगठन की अपनी आंतरिक आवश्यकता से संबंधित हो या उन संभावित स्त्रोतों के द्वारा जिनकी पूर्ति संगठन के बाहर के स्त्रोतों से हो सकती हैं। यह सत्य है कि सही व्यक्ति दुर्लभ हैं, ऐसे बाजार की आवश्यकता है जो लोगों को काम/नौकरी तथा संस्थाएं दोनों ही उपलब्ध करा सकें। यहां तक कि उन स्थितियों में जब एक रिक्त पद के लिए सैकड़ों की संख्या में प्रत्याशियों के आवेदन पत्र आते है। नए नियुक्त कर्मचारियों को संस्था के कार्यो के सामान्य निष्पादन हेतु उन्हें अभिविन्यास/प्रशिक्षण को आवश्यकता पडती हैं और उस परिस्थिति में जहां कर्मचारियों का चयन केवल शैक्षणिक योग्यताओं तथा सीखने की क्षमता के आधार पर किया जाता हैं, उन्हें विशेष कौशलों में प्रशिक्षण की भी आवश्यकता पड सकती हैं।

उदाहरण के लिए-

किसी कर्मचारी को उसके बहिर्मुखी होने पर तथा उसे अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान है तो, व्यवसाय प्रक्रिया बाह्य स्त्रोतीकरण (बी.पी.ओ.) से लिया जाता हैं, उसे भी वास्तविक कार्य स्थान रखने से पहले प्रासंगिक व्यावसायिक प्रक्रियाओं में दूरभाष-संवाद, शिष्टाचार तथा साथ ही साथ शैली रूपान्तर में प्रशिक्षण की आवश्यकता पडती हैं। कर्मचारी, अभिविन्यास तथा कार्य-स्थान पर हुए अनुभवों के आधार पर संगठन की पहली छवि बनाता है यहां तक कि काम करते हुए भी कर्मचारियों को अपने ज्ञान तथा कौशलों में वृद्धि करने के लिए तथा उच्च उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने हेतु प्रशिक्षण की आवश्यकता पडती है। अतः कर्मचारी-प्रशिक्षण तथा विकास नियुक्तिकरण प्रक्रिया के अन्य दूसरे महत्वपूर्ण पहलू है। ये सभी तत्व दी गई आकृति में दर्शाए गए हैं-

मानव-शक्ति आवश्यकताओं का आंकलन
↓
भर्ती
↓
आवेदकों में से चयन
↓
अनुस्थापना तथा अभिविन्यास
↓
प्रशिक्षण तथा विकास

(1) **मानव-शक्ति आवश्यकताओं का आंकलन**- सांगठनिक ढांचे की रूपरेखा बनाते समय, विभिन्न निर्णयों तथा निर्णायक स्तरों का विश्लेषण करते हैं तथा ढांचे के समतल एवं ऊर्ध्वाधर आयामों के क्रम-विकास को ध्यान में रखते हुए विभिन्न क्रियाकलापों तथा उनके मध्य संबंधों का भी विश्लेषण करते हैं। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के पदों का अभ्युदय होता हैं। स्पष्टतः प्रत्येक कार्य पद के निष्पादन के लिए कर्मचारी की नियुक्ति की आवश्यकता पडती है जिसके पास विशिष्ट शैक्षणिक योग्यता, कौशल तथा पूर्व-अनुभव इत्यादि हैं। इस प्रकार मानव-शक्ति आवश्यकताओं को समझना केवल यह जानना नहीं है कि कितने व्यक्तियों की आवश्यकता हैं, बल्कि यह जानना भी है कि किसी प्रकार के कर्मचारियों की आवश्यकता है। इसके उपरान्त यह आवश्यक है कि महिलाओं को प्रोत्साहित किया जाए, पिछडे समुदाय के लोगों को, विशेष आवश्यकता वाले लोगों (जैसे-शारीरिक अक्षमता, जिन्हें कम दिखाई या सुनाई देते है।) को भी प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है ताकि वे भी हमारी संस्थाओं में उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर नियुक्त हो सकें, जिससे मानव-शक्ति की आवश्यकताओं को इसके अनुसार पुनः परिभाषित किया जा सके।

क्रियात्मक रूप से मानव-शक्ति आवश्यकताओं को समझने के लिए एक तरफ कार्यभार विश्लेषण की आवश्यकता है तथा दूसरी तरफ कार्य-शक्ति विश्लेषण की। कार्य विश्लेषण विभिन्न कार्यो के निष्पादन तथा सांगठनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कितनी संख्या में तथा किस प्रकार के मानव संसाधनों की आवश्यकता पडेगी? इत्यादि के निर्धारण को संभव बनाती है। कार्य-शक्ति विश्लेषण से पता चलता है कि कितनी संख्या में तथा किस प्रकार के मानव-संसाधन उपलब्ध हैं? वास्तव में इस प्रकार के प्रयास/अभ्यास यह प्रकट करते हैं कि संस्था में आवश्यकता से कम नियुक्तियां हैं, ज्यादा है अथवा उपयुक्त हैं। यह संकेत दिया जा सकता है कि नियुक्तिकरण क्रियाओं का आधार हैं। उस स्थिति में जब आवश्यकता से अधिक नियुक्तिया होती है, तो कर्मचारियों को निकालने/पदच्युत करने अथवा उन्हें अन्यत्र स्थानांतरित करने की आवश्यकता पडती हैं, कम नियुक्तिकरण की स्थिति में भर्ती प्रक्रिया प्रारम्भ करने की आवश्यकता पडती है तथापि, ऐसा करने से पहले, यह महत्वपूर्ण है कि मानव-शक्ति आवश्यकताओं को विशेष पद विवरण तथा उस पर नियुक्त होने वाले का वांछित रेखाचित्र में रूपान्तरण कर लें जैसे-वांछित योग्यताएं, अनुभव, व्यक्तिगत विशेषताएं तथा अन्य। यह सूचना संभावित कर्मचारियों को ढूढने में एक सांचे के रूप में कार्य करती हैं।

(2) **भर्ती**- संभावित कर्मचारियों को ढूँढने की प्रक्रिया तथा उन्हें संगठन में पदों के लिए आवेदन देने के लिए प्रेरित करने को भर्ती कहते हैं। 'रिक्त पदों' का विज्ञापन बनाते समय वे सूचनाएं जो पद-विवरण तथा प्रत्याशियों की रूपरेखा बनाने की प्रक्रिया में एकत्रित हुई थी, उनका उपयोग किया जा सकता हैं।

(3) **चयन**- चयन एक ऐसी प्रक्रिया है जो भर्ती के समय बनाए गए संभावित पद-प्रत्याशियों के निकाय में से कर्मचारियों को चुनती हैं।

(4) **अनुस्थापना तथा अभिविन्यास** -कार्यस्थल पर कर्मचारियों के समाजीकरण का प्रारम्भ कर्मचारियों के पद संभालते ही हो जाता हैं। अनुस्थापना से तात्पर्य कर्मचारी के पदभार संभालने से है जिसके लिए उसका चयन हुआ।

(5) **प्रशिक्षण तथा विकास**- प्रत्येक को उच्च पदों पर पहुंचने का सुअवसर मिलना चाहिए। इन सुअवसरों को देने का उत्तम तरीका कर्मचारियों को सीखने की सुविधा देना हैं।

(6) **निष्पादन मूल्यांकन**- कर्मचारी अपने पदों की मांगो की पूर्ति करने में कितना सफल हैं। सुधार के लिए पुनर्निवेशन का होना आवश्यक हैं। इन मूल्यांकनों का उपयोग प्रशिक्षण, पदोन्नति एवं पारिश्रमिक से संबंधित विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जाता है।

(7) **पदोन्नति एवं भविष्य नियोजन**- संगठन गतिशील होते हैं। परिणामस्वरूप लोगों को उच्च पदों की ओर प्रगति की निरन्तर आवश्यकता होती हैं। कई कर्मी अपने वर्तमान पद के लिए अयोग्य सिद्ध हो रहे हैं इसलिए उचित यही रहेगा कि उनका उनके कौशल एवं रूचि के अधिक अनुरूप पदों पर स्थानांतरण कर दिया जाए। इस वर्ग में व्यक्तियों की पदोन्नति, हस्तांतरण एवं अवनति से जुडी क्रिया में सम्मिलित हैं।

(8) **पारिश्रमिक**- किसी भी संगठन की वृहत्त समस्या, एक व्यक्ति के वेतन को उसके योगदान से मिलान करना है। मजदूरी अथवा वेतन का ढांचा ऐसा होना चाहिए कि वह उचित हो। पारिश्रमिक से अभिप्राय कर्मचारियों को उनके संगठन के लिए योगदान के बदले प्राप्ति से हैं। सामान्यत: कर्मचारी अपनी सेवाएं तीन प्रकार के प्रतिफल के लिए देते हैं- वेतन, सुविधाएं एवं प्रलोभन। भुगतान से अभिप्राय मूल मजदूरी एवं वेतन भत्ते से है जो कर्मचारी को अवधि के आधार पर मिलते हैं। प्रलोभन में बोनस, कमीशन एवं लाभ में हिस्सेदारी की योजनाएं सम्मिलित हैं। इनको इस प्रकार से निर्धारित किया जाता हैं कि कर्मचारी साधारण उम्मीद से कहीं अधिक उत्पादन के लिए प्रोत्साहित हों।

निर्देशन (Direction)

निर्देशन का शाब्दिक अर्थ है, **'आदेश व निर्देश देना'** किन्तु प्रबंधन मे यह व्यापक महत्व रखता है। इस तरह निर्देशन मे वे प्रक्रियाएँ और तकनीकें समाहित की जाती है जिनका उपयोग निर्देश जारी करने के लिए किया जाता है और यह देखा जाता है कि सभी क्रियाएँ योजना के अनुरूप हो रही है।

निर्देशन के गुण

- निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया।
- प्रबंधकीय कार्य।
- परिणाम के अनुरूप क्रियाओं का पर्यवेक्षण।

निर्देशन के तत्व

- संचार।
- नेतृत्व।
- अभिप्रेरणा।
- पर्यवेक्षण।
- समन्वय।
- नियंत्रण।

निर्देशन के सिद्धांत

अच्छा या प्रभावी निर्देशन प्रदान करता एक चुनौतीपूर्ण कार्य है क्योंकि इसमे बहुत सी जटिलताएँ सम्मिलित है। एक प्रबंधक को उन सभी व्यक्तियों के साथ जिनकी भिन्न पृष्ठभूमि तथा उम्मीदे है, संबंध रखना पड़ता है यह निर्देशन की प्रक्रिया को जटिल बना देती है। कुछ निर्देशन के मार्गदर्शन सिद्धांत है जो निर्देशन की प्रक्रिया में सहायक हो सकते है। इन सिद्धांतों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है-

- **अधिकतम व्यक्तिगत योगदान-** यह सिद्धांत पर बल देता है कि निर्देशन की तकनीकें सभी व्यक्तियों को संस्था मे सहायता दे कि वे अपनी संभावित क्षमताओं का अधिकतम योगदान सांगठनिक उद्देश्यों की पूर्ति में दे सकें तथा संस्था के कुशल निष्पादन के लिए कर्मचारियों की अप्रयुक्त ऊर्जा को उभार कर प्रयोग मे ला सकें। उदाहरण के लिए, एक अच्छा अभिप्रेरण नियोजन, वित्तीय तथा गेर वित्तीय प्रतिफलों सहित कर्मचारियों को प्रेरित कर सके। उदाहरण के लिए, एक अच्छा अभिप्रेरण नियोजन, वित्तीय तथा गैर वित्तीय प्रतिफलों सहित कर्मचारियों को प्रेरित कर सके। क्योंकि उन्हें यह लगेगा कि उनके इन प्रयासों का उन्हें उपयुक्त पारिश्रमिक/प्रतिफल मिलेगा।
- **सांगठनिक उद्देश्यों में तालमेल-** प्राय: हम पाते है कि कर्मचारियों के व्यक्तिगत उद्देश्यों तथा सांगठनिक उद्देश्यों मे आपस में द्वंद्व होता है। उदाहरण के लिए, एक कर्मचारी अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आकर्षक वेतन तथा वित्तीय लाभों की आकांक्षा रखता है। संस्था कर्मचारियों से यह अपेक्षा करती है कि वे अपनी उत्पादकता बढ़ाएँ ताकि वांछित लाभ हो सके। परन्तु अच्छा निर्देशन इन दोनों मे तालमेल बिठाता है तथा कर्मचारी को यह विश्वास दिलाता है कि कार्यकुशलता तथा पारिश्रमिक दोनों एक दूसरे के पूरक है।
- **आदेश की एकता-** यह सिद्धांत इस पर बल देता है कि कर्मचारी को केवल एक ही उच्च अधिकारी से आदेश मिलने चाहिए। यदि आदेश एक से अधिक अधिकारियों से मिलते है, तो यह भ्रांति पैदा करते है तथा संस्था में द्वंद्व तथा अव्यवस्था फैलाते है। 'आदेश की एकता' सिद्धांत के पालन से भावी निर्देशन निश्चित होता है।
- **निर्देशन तकनीकों की उपयुक्ता/औचित्य-** इस सिद्धांत के अनुसार, निर्देशन उपयुक्त अभिप्रेरक तथा नेतृत्व की तकनीकों का प्रयोग करते समय कर्मचारियों की आवश्यकताओं, योग्यताओं उनके दृष्टिकोण तथा अन्य वस्तु-स्थितियों का ध्यान रखना चाहिए। उदाहरण के लिए, कुछ व्यक्तियों के लिए पैसा एक सशक्त अभिप्रेरक का कार्य कर सकता है, दूसरी तरफ किसी के लिए पदोन्नति एक भावी प्रेरक का कार्य करती है।
- **प्रबंधकीय संप्रेषण-** संस्था के सभी स्तरों पर प्रभावी प्रबंधकीय संप्रेषण निर्देशन को भी प्रभावपूर्ण बनाता है। अधीनस्थों की संपूर्ण पारस्परिक समझ को बढ़ाने के लिए निर्देशन को स्पष्ट अनुदेश/निर्देश, जारी करने चाहिए। उपयुक्त प्रतिपुष्टि के द्वारा प्रबंधकों को यह निश्चित करना चाहिए कि अधीनस्थ उसके निर्देश को स्पष्ट रूप मे समझ रहे है।
- **अनौपचारिक संगठन का प्रयोग-** एक प्रबंधक को यह समझना चाहिए कि प्रत्येक औपचारिक संगठन के अंतर्गत ही अनौपचारिक समूह तथा संगठन पाए जाते है। आश्यकता है उन्हें पहचान कर, उन संगठनों का समुचित प्रयोग एक प्रभावी निर्देशन के लिए करने की।
- **नेतृत्व-** कर्मचारियों को निर्देशन करते समय, प्रबंधक को एक अच्छे नेतृत्व का प्रदर्शन करना चाहिए क्योकि यह अधीनस्थों को बिना उसके बीच किसी असंतोष की भावना के सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।
- **अनुसरण करना-** केवल आदेश देना ही पर्याप्त नहीं है। प्रबंधक को निरंतर पुनरीक्षण के द्वारा अनुसरण करना चाहिए कि उनके आदेशों का यथावत पालन हुआ है कि नहीं अथवा उन्हें किन्ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। यदि आवश्यक हो, तो उपयुक्त संशोधन/परिवर्तन इस दिशा मे किये जाने चाहिए।

निर्देशन का महत्व

- कार्य को प्रारम्भ करने में।
- दक्षतापूर्णक एवं प्रभावी तरीके से उद्देश्यों की प्राप्ति।
- मानवीय संबंधों में सुधार।
- परिवर्तनों के प्रति सकारात्मकता।
- उद्देश्यों की प्राप्ति मे सहायक।
- प्रभावकारी समन्वय और कार्य पूर्ण करने मे सहायक।
- सामूहिक कार्यो एवं संस्था की सफलता में सहायक।

समन्वय

सामान्य शब्दों मे किसी संगठन के अलग-अलग कर्मचारियों विभागों तथा कर्मचारी समूहों की क्रियाओं में इस प्रकार से सामन्जस्य स्थापित करना ताकि वे संगठन को न्यूनतम लागत पर अधिकतम परिणामों की प्राप्ति करा सके, समन्वय कहलाता है। समन्वय के अंतर्गत संगठन मे व्याप्त विभिन्न भिन्नताओं को समाप्त कर लोगों के दृष्टिकोण, व्यवहार एवं प्रयासों मे एकता स्थापित की जाती है।

वस्तुत: किसी संगठन के सामान्य उद्देश्यो को प्राप्त करने व उसके कार्य को सुविधाजनक एवं सफल बनाने के लिए विभिन्न व्यक्तियों के दृष्टिकोणों प्रयासों व प्रयत्नों के मध्य सामन्जस्य स्थापित करना ही समन्वय कहलाता है। समन्वय को संगठन या प्रबंधन का सार माना जाता है। **प्रशासन के क्षेत्र में समन्वय का अर्थ है, विभिन्न विभागों तथा उप-विभागों, एक उपकरण तथा अन्य उपकरणों के कार्यो मे तालमेल उत्पन्न करना, जिससे कि वे पृथक रहते हुए भी एक संगठन के रूप में कार्य कर सके।** समन्वय की प्रक्रिया एक ओर तो संगठन के कर्मचारियों मे सहयोगपूर्वक कार्य करने की प्रवृत्ति विकसित करती है तथा दूसरी ओर संगठन के कार्यो मे होने वाले दोहराव को रोकती है।

समन्वय की परिभाषाएं- समन्वय की कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित है-

- **एल.डी. ह्वाइट** के अनुसार, ''समन्वय एक भाग के कार्यो का दूसरे भाग के कार्यो से तालमेल बैठाने की क्रिया को कहते है तथा उनकी गतिविधियों से इस प्रकार ताल-मेल बैठाया जाता है, जिससे कि वह पूर्ण की उत्पत्ति मे अपना अधिकतम सहयोग प्रदान कर सके।''
- **मूने** के अनुसार, ''किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उपर्युक्त होने वाले प्रयत्नों, कार्य की एकता तथा उनको क्रमिक रूप से संगठित करने को समन्वय कहते है।''
- **मेक्फारलैण्ड** के अनुसार, ''समन्वय प्रबन्ध का सार तत्व है जो कि एक समूह के लक्षयों की प्राप्ति के लिए व्यक्तिगत प्रयासों मे एकरूपता लाने के लिए किया जाता है।''

निष्कर्षत: के रूप मे यह कहा जा सकता है **कि समन्वय प्रबंध का वह कार्य है जो कि किसी संगठन मे कार्यरत व्यक्तियों के मध्य उनकी क्रियाओं मे एकरूपता स्थापित कर संगठन के लक्ष्यो की प्राप्ति मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।** संक्षेप मे संगठन के कार्यकलापों एवं गतिविधियों मे उचित संबंध, समायोजन तथा तालमेल स्थापित करना ही समन्वय कहलाता है।

समन्वय की आवश्यकता एवं महत्व (Need and Importance of Co-ordination)

समन्वय की आवश्यकता एवं महत्व को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझाया जा सकता है-

- **संघर्ष एंव विवादों को दूर करना**- किसी भी संगठन मे विभिन्न कर्मचारियों के बीच संघर्ष उत्पन्न हो सकता है। क्योकि प्राय: यह देखा जाता है कि संगठन मे प्रत्येक व्यक्ति अपने ही ढंग से कार्य करना चाहता है, वह यह नही देखता है कि इसका दूसरों पर क्या प्रभाव पडेगा। ऐसी स्थिति में समन्वय द्वारा ही संघर्ष एवं विवादो को दूर किया जा सकता है।
- **सहयोग की भावना**- किसी भी संगठन के विभिन्न विभागों एवं अधिकारियों मे सहयोग आवश्यक है। यदि उनमे सहयोग की भावना नही होगी तो संगठन की गति रूक जाएगी और वे लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग से हट जायेगे। समन्वय द्वारा उनमे टीम भावना व सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति की भावना उत्पन्न होती है।
- **कार्यो के दोहराव को रोकना**- समन्वय के अभाव मे संगठन मे दोहराव का दोष उत्पन्न होना स्वाभाविक है। जब संगठन के विभिन्न सदस्यों को यह ज्ञात नही रहता कि दूसरे क्या कर रहे है तो वह स्वयं ऐसे कार्य करने लग जाते है, जो दूसरे अधिकारी पहले से ही सम्पन्न कर रहे है। समन्वय द्वारा संगठन के सभी भाग काम की पुनरावृद्धि किए बिना, या टकराए बिना निर्धारित लक्ष्यों की ओर कदम मिलाते हुए आगे बढ़ते है।
- **कार्यो मे क्रमबद्धता लाने के लिए**- संगठन के कार्यो मे क्रमबद्धता लाने के लिए समन्वय का अत्यधिक महत्व होता है।
- **कर्मचारियों का विकास एवं स्थायित्व**- अच्छे समन्वय से संस्था मे अच्छे कर्मचारियों मे वृद्धि होती है और वे संस्था मे भी बने रहते है।
- **मानवीय संबंधों पर बल**- समन्वय की धारणा मानवीय संबंधों के विकास पर बल देती है। यह पारस्परिक सहयोग एवं विकास की भावना पर आधारित होता है। इससे पारस्परिक द्वेष, वर्ग सघर्ष तथा ईर्ष्या आदि पर रोक लगती है।
- **विविधता मे एकता**- यद्यपि किसी संगठन मे कार्य करने वाले व्यक्तियों का लक्ष्य समान होता है, फिर भी उनकी योग्यता एवं कार्य करने के तरीकों मे भिन्नता पायी जाती है। यह भिन्नता स्वाभाविक भी है। इसी भिन्नता मे समन्वय एकता स्थापित करता है।
- **कुल उपलब्धि में वृद्धि**- यदि यह मान भी लिया जाए कि एक समूह मे समानता की पर्याप्त मात्रा है और इसके विभिन्न सदस्य सामान्य लक्ष्य की पूर्ति क लिए भरसक प्रयत्न करते है। फिर भी सामूहिक प्रयासों की प्राप्ति के लिए समन्वय की नितान्त आवश्यकता होती है, क्योकि प्रयासों की उपलब्धियां व्यक्तिगत प्रयत्नों की उपलब्धियों से कही अधिक होती है। अत: समूह के प्रयासों मे सामन्जस्य स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है। समूह प्रयासों मे सामन्जस्य स्थापित करने से कुछ उपलब्धि में वृद्धि होती है और उपक्रम का चहुंमुखी विकास होती है।
- **कार्यकुशलता का स्तर उच्च करने हेतु**- समन्वय के माध्यम से उन गतिविधियों तथा प्रक्रियाओं मे सामन्जस्य स्थापित किया जाता है जो परस्पर गहराई से जुड़ी होती है। समन्वय के अभाव मे न केवल कार्य विलम्ब से निष्पादित होता है बल्कि संसाधनों का दुरूपयोग भी होता है। कार्य मे देरी से स्वभाविक रूप से लागत बढ़ती है। अत: समन्वय संगठन के कार्यो में कार्य-कुशलता का स्तर उच्च करने हेतु प्रयास करता है। इससे मितव्ययिता भी प्राप्त होती है।
- **संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति**- किसी भी संगठन के निर्धारित लक्ष्य तथा उद्देश्यों की प्राप्ति को सुनिश्चित करने के लिए उसके विभिन्न अंगों तथा कर्मचारियों के मध्य सकारात्मक एवं व्यवस्थित सहयोग आवश्यक है। कई बार संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए केवल आन्तरिक समन्वय ही नही बल्कि बाहरी संगठनों से भी समन्वय करना आवश्यक हो जाता है।

- **कार्यो मे जटिलता तथा विशेषज्ञता**- आधुनिक युग में न तो सरकार के कार्यो की प्रकृति सरल है और न ही संगठनों की संरचनात्मक स्थिति स्पष्ट है। विशिष्टीकरण के कारण आये दिन नये संगठन बनाने पड़ते है अथवा विद्यमान संगठन मे ही विशेषीकृत इकाई बनानी पड़ती है। विकेन्द्रीकरण तथा कार्य विभाजन के कारण भी संगठन मे समन्वय संबंधी आवश्यकता बढ़ती जाती है।
- **प्रबंध का सार तत्व**- समन्वय प्रबंध का सार है जो कि सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए व्यक्तिगत प्रयासों मे एकरूपता स्थापित करता है।
- **कर्मचारियों के मनोबल मे वृद्धि**- समन्वय चूंकि संस्था मे कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों को महत्व प्रदान करता है और उनके कार्यो को अन्य लोगों के कार्यो से जोडने के प्रयास करता है। फलस्वरूप कर्मचारियों के मनोबल मे वृद्धि होती है।
- **सृजनात्मक शक्ति**- समन्वय संगठन की सृजनात्मक शक्ति है क्योकि इसके द्वारा ही वैयक्तिक एवं सामूहिक प्रयासों का उपयोग किया जा सकता है।

समन्वय के साधन/तकनीक (Means/Techniques of Co-ordination)
अथवा
संगठन में अथवा प्रशासनिक व्यवस्था मे समन्वय स्थापित करने की विधियाँ

संगठन अथवा प्रशासनिक व्यवस्था मे समन्वय स्थापित करने की विधियों को मुख्य रूप से दो भागों मे बांटा जा सकता है-

I. औपचारिक विधियां या साधन

- **नियोजन**- समन्वय के औपचारिक साधनों मे नियोजन का प्रमुख स्थान है। नियोजन के माध्यम से अधीनस्थों के मतभेदों को दूर किया जा सकता है। नियोजन द्वारा कर्मचारियों की विस्तृत योजना तथा सम्भावित बाधाओं पर पहले से ही विचार कर लिया जाता है और उन्हें दूर करने के उपाय भी सोच लिये जाते है। अत: नियोजन समन्वय का एक महत्वपूर्ण साधन है।
- **संगठनात्मक पद्धति**- लोक प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों में सम्मेलन, समितियां, गोष्ठियां, अंतर-विभागीय समितियां आदि कुछ ऐसे साधन होते है, जिनके आधार पर संगठन के मतभेदों को दूर कर उनमें एकरूपता स्थापित की जा सकती है। भारत में प्रशासनिक समन्वय स्थापित करने वाले संगठनात्मक साधन कई प्रकार के है। योजना आयोग, क्षेत्रीय परिषदें, राष्ट्रीय विकास परिषद, केन्द्रीय सचिवालय, मन्त्रिमण्डल की समितियां आदि समन्वय के कार्य मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।
- **अंतर्विभागीय समितियां**- संगठन में समन्वय स्थापित करने के लिए समय-समय पर अंतर्विभागीय बैठके तथा सम्मेलन बुलाना अत्यधिक लाभकारी उपाय है। इन बैठकों व सम्मेलनों मे विचार-विमर्श स्वतंत्र रूप से होता है, मतभेद मिल-बैठकर दूर किए जा सकते है तथा ध्येय की एकता की भावना प्रोत्साहित की जा सकती है।
- **आदेश निर्देश एवं आज्ञा-पत्र**- संगठन का अध्यक्ष आदेश, निर्देश एवं आज्ञा-पत्र आदि जारी करके अधीनस्थ कर्मचारियों मे समन्वय स्थापित कर सकता है।
- **वित्त मन्त्रालय**- केन्द्रीय सरकार का वित्त मन्त्रालय विभिन्न प्रशासकीय विभागों के कार्यक्रमों, मांगो तथा दावों मे समन्वय स्थापित करके अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- **प्रक्रियाओं एव रीतियों का प्रमाणीकरण**- संगठन मे समन्वय स्थापित करने के लिए नियमों, विनियमों आदि के द्वारा प्रक्रियाओं एवं रीतियों का प्रमाणीकरण किया जा सकता है।
- **मन्त्रिमण्डल तथा मण्डलीय सचिवालय**- मन्त्रिमण्डल तथा मण्डलीय सचिवालय भी प्रशासनिक कार्यो मे समन्वय स्थापित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विभिन्न सहकारी विभागों मे उत्पन्न होने वाले पारस्परिक संघर्षो के मामले मन्त्रिमण्डल मे विचार करके दूर किए जाते है और सरकार के विभिन्न मन्त्रालयों और विभागों मे समन्वय करने का कार्य मन्त्रिमण्डल के सचिवालय द्वारा किया जाता है। भारत में मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय में समन्वय का एक विभाग है, जिसका मुख्य कार्य ही विभिन्न विभागों के पारस्परिक मतभेदों तथा विवादों का समाधान करना है।
- **प्रभावी सम्प्रेषण व्यवस्था**- प्रभावी सम्प्रेषण समन्वय का आधार है। कुशल एवं प्रभावी संचार व्यवस्था समन्वय को प्रभावी बनाती है, इसका प्रमुख कारण सब सूचनाओं, विचारों, आदेशों, निर्देशों आदि मे शीघ्र आदान-प्रदान की सुविधा रहती है।
- **समन्वय समितियां**- अनेक विभागाध्यक्षो को नियुक्त कर विभिन्न स्थायी या अस्थायी समितियों के माध्यम से भी समन्वय स्थापित किया जा सकता है।
- **पर्यवेक्षण द्वारा**- पर्यवेक्षक संगठन मे निर्देश देकर, समन्वय के सिद्धांत पर जोर देकर तथा समन्वित प्रयासों का परीक्षण करके अपने अधीनस्थों के माध्यम से समन्वय स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करते है।
- **कार्यविधि का स्तरीकरण**- प्रशासन मे समन्वय को आसान बनाने के उद्देश्य से कार्यविधि को निश्चित कर दिया जाता है। इससे त्रुटियां नही रह पाती है। बजट, लेखे आदि इससे श्रेष्ठ उदाहरण है।
- **सम्पर्क अधिकारियों द्वारा**- संगठन में सम्पर्क अधिकारियों एवं प्रतिनिधियों की सहायता से समन्वय स्थापित किया जाता है।
- **मुख्य कार्यपालिका द्वारा**- मुख्य कार्यपालिका द्वारा व्यक्तिगत निरीक्षण, अवलोकन तथा नियंत्रण की सहायता से संगठन की विभिन्न गतिवधियों मे समन्वय स्थापित किया जाता है।
- **संबधितों से सम्पर्क एवं सम्मति लेना**- प्रशासन मे समस्त संबंधितो से सम्पर्क करके उनसे सम्मति लेने की प्रथा समन्वय स्थापित करने में सहायक होती है।
- **अन्य विधियां**-
  - बजट द्वारा समन्वय।
  - प्रतिवेदन द्वारा समन्वय।
  - स्पष्ट नीतियों द्वारा समन्वय।
  - स्पष्ट अधिकार और उत्तरदायित्वों द्वारा समन्वय।
  - जांच तथा अवलोकन द्वारा समन्वय।

II. औपचारिक विधियां या साधन

- **अनुशासित दल प्रणाली**- अशासकीय या अनौपचारिक समन्वय का सबसे महत्वपूर्ण साधन अनुशासित दल प्रणाली है। अनुशासन दल प्रणाली शासन की नीतियों, योजनाओ तथा कार्यक्रमों मे समायोजन का अनौपचारिक कार्य करती है। भारत मे जब-जब भी केन्द्र एवं राज्य स्तर पर एक दल सत्तारूढ़ रहा तब-तब सारे देश की नीतियों, योजनाओं तथा कार्यक्रमों मे समायोजन रहा।
- **व्यक्तिगत सम्पर्क**- पारस्परिक अनौपचारिक वार्ताओं से भी समस्याओं का समाधान आसानी से हो जाता है, जो लिखित अथवा अन्य साधनों से सम्भव नही है। **फाईनर** ने इस संबंध मे लिखा है कि, ''अनौपचारिक सहयोग के विभिन्न साधनों जैसे फोन करने, भोजन पर आमन्त्रित करने तथा मिलने के लिए आने आदि का प्रभाव बड़ा विलक्षण होता है।'' इनसे समन्वय स्थापित करने मे बड़ी सहायता मिलती है।
- **भावुकतापूपर्ण अपीलें**- संगठन के अध्यक्ष को कभी-कभी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भावुकतापूर्ण अपीले कर्मचारियों के मध्य जारी करके उत्साह बढ़ाना पड़ता है, ताकि वे प्रशासन से मिलकर कार्य करे।
- **अनौपचारिक संगठन**- इनके द्वारा संचार एवं उनसे वार्तालाप भी समन्वय स्थापित करने के लिए लाभदायक रहता है।
- **चाय, पार्टी, समारोह आदि**- चाय, पार्टी, समारोह तथा अनौपचारिक संबंधों या दबावों का सहारा लेकर भी समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

समन्वय की बाधाएं (Hurdles of Co-ordination)

थियो हैमन ने लिखा है कि, ''समन्वय सरलतापूर्वक प्राप्त ही होता।'' उसकी प्राप्ति मे अनेक बाधाएं आती है। **लूथर गुलिक** के मतानुसार समन्वय के मार्ग की प्रमुख बाधाएं निम्न प्रकार है-

- लोगों के व्यवहार के संबंध मे भविष्य की अनिश्चितता।
- नेताओं में ज्ञान, अनुभव, बुद्धिमानी तथा चरित्र की कमी और उनके उलझे हुए विरोधी विचार तथा उद्देश्य।
- प्रशासकीय कौशल तथा तकनीक मे कमी।
- अनेक विभिन्नताओं का जमघट और मानवीय ज्ञान की अपूर्णता, विशेषता: मनुष्य और जीवन के विषय में।
- नवीन विचारों तथा कार्यक्रमों का विकास करने, उन पर विचार करने, उन्हें परिपूर्ण बनाने तथा अपनाने मे व्यवस्थित तरीकों की कमी।

सक्लर हडसन ने समन्वय की निम्न और बाधाएं बतलायी है-

- आकार तथा जटिलताएं।
- व्यक्तिगत तथा राजनैतिक कारक।
- लोक प्रशासन तथा लोक प्रशासन के तीव्र गति से बढ़ते हुए अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप के विषय मे ज्ञान और विवेक की नेताओं मे कमी।
- अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं तक लोक प्रशासन का त्वरित प्रसार।

संक्षेप मे, लोक प्रशासन के आकार मे वृद्धि, नवीन आवश्यकताओं तथा मांगों का प्रचार करने के लिए नए अभिकरणों की रचना करने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति, नियंत्रण के विस्तार का संकुचित होना, कार्य को अपने से ऊपर के अधिकारी पर छोडने की अधीनस्थों की प्रवृत्ति, अधिकारी की ओर से अधिकारों के विकेन्द्रीकरण का अभाव आदि।

प्रभावी समन्वय के लिए पूर्व स्थितियां या दशाएं (Preconditions for Effective Co-ordination)

एक विशाल संगठन मे प्रभावी समन्वय के लिए कुछ पूर्व स्थितियां या दशाएं निम्नलिखित बतलायी जा सकती है-

- संगठन के उद्देश्य एवं लक्ष्य स्पष्ट रूप से पहले से ही निर्धारित कर लिये जाने चाहिए।
- संगठन की **प्रभावपूर्ण संगठन संरचना** होनी चाहिए। इसमें आदेश-निर्देश तथा सूचनाएं व सुझाव आदि लेने की स्पष्ट रेखाएं हो।
- संगठन में **प्रभावी सम्प्रेषण व्यवस्था** होनी चाहिए।
- संगठन की जो भी **योजनाएं** बनायी जाये, वे स्पष्ट हो तथा उनमें कार्यक्रम, नीतियों, विधियों तथा मोर्चाबन्दी को पूर्ण स्थान प्राप्त हो।
- संगठन मे प्रभावी समन्वय की स्थापना के लिए सभी **व्यक्तियों मे टीम भावना का विकास** किया जाना चाहिए।
- प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों पर समन्वय **समितियों की स्थापना** की जानी चाहिए।
- संगठन मे **सम्पर्क अधिकारी की नियुक्ति** की जानी चाहिए।
- समन्वय की स्थापना के लिए संगठन मे **प्रभावी नियंत्रण व्यवस्था** भी होनी चाहिए।
- संगठन मे **सामूहिक निर्णय लेने के प्रयास** किए जाने चाहिए।
- **जांच एंव निरीक्षण की उचित व्यवस्था** होनी चाहिए।
- संगठन मे समय-समय पर **सभाओं एवं विचार-गोष्ठियों का आयोजन** करके विचारों का आदान-प्रदान किया जाना चाहिए।
- **समन्वय समयानुकूल** होना चाहिए तथा यह सामूहिक हितों पर आधारित होना चाहिए।

न्यूमैन ने संगठन मे समन्वय की स्थापना के लिए पांच पूर्व शर्ते वर्णित की है-

- सरलीकृत संगठन।
- सामन्जस्यपूर्ण कार्यक्रम और नीतियां।
- संचार के सुव्यवस्थित तरीके।
- ऐच्छिक समन्वय की स्थापना।
- पर्यवेक्षण द्वारा समन्वय।

नियंत्रण

नियंत्रण का अर्थ- संचालन, प्रबंधक या मुख्य कार्यपाल की सकारात्मक क्रिया है, किंतु नियंत्रण विरोधात्मक तथा निषेधात्मक प्रक्रिया है। नियंत्रण प्रशासन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पथ-प्रदर्शन एवं नियमन का कार्य करता है। यह पथ-प्रदर्शन एवं नियामक क्रिया होती है। इसका कार्य यह देखना होता है कि मानवीय समूह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति अपनी योजनाओं के अनुसार कर पा रहा है या नहीं। नियंत्रण वह प्रबंधकीय कार्य होता है जो निर्धारित एवं स्पष्ट की गई नीतियों के उचित क्रियान्वयन के सतत् अनुगमन से संबंध रखता है। इस प्रकार नियंत्रण में किसी संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति की जाने वाली क्रियाएं, अपनायी जाने वाली योजनाएं ठीक से चल रही है या नहीं, की जानकारी करना तथा यदि ठीक ढंग से नहीं चल रही है तो उनमें आने वाली बाधाओं का पता लगाना और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना आदि सम्मिलित होता है।

नियंत्रण की परिभाषाएं

1. शब्दकोषीय दृष्टि से नियंत्रण का अर्थ हैं- 'निर्देश देने, आदेश देने तथा प्रबंध करने की सत्ता या शक्ति, नियंत्रण है या किसी चीज का प्रबंध अथवा प्रतिबंध नियंत्रण है।'
2. हेनरी फेयॉल के अनुसार, 'किसी उपक्रम में नियंत्रण से आशय इस बात का मूल्यांकन करना है कि प्रत्येक कार्य अपनायी गई योजनाओं, दिये गये निर्देशों एवं निर्धारित सिद्धांतों के अनुरूप हो रहा है। इसका उद्देश्य दुर्बलताओं एवं त्रुटियों को प्रकाश में लाकर उन्हें सुधारने एवं पुनरावृत्ति को रोकना है।'
3. मैक्फारलैण्ड के अनुसार, 'नियंत्रण किसी प्रणाली का वह कार्य है, जो योजनाओं के अनुसार निर्देश प्रदान करता है।'
4. फिलिप कोटलर के अनुसार, 'नियंत्रण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा वास्तविक परिणामों को वांछित परिणामों के निकट लाने का प्रयास किया जाता है।'
5. गोट्ज के अनुसार, 'प्रबंधकीय नियंत्रण का आशय कार्यों को योजनानुसार सम्पन्न करने से है।'
6. जॉर्ज आर. टैरी के अनुसार, 'नियंत्रण का अर्थ यह निर्धारित करना है कि क्या किया जा रहा है अर्थात् निष्पादन का मूल्यांकन करना और आवश्यक हो, तो सुधारात्मक उपाय अपनाना, जिससे निष्पादन योजनाओं के अनुसार हो सके।'
7. कून्ट्ज एवं ओडोनल के अनुसार, 'नियंत्रण एक प्रबंधकीय कार्य है जो कि अधीनस्थ कर्मचारियों के निष्पादन को मापता एवं उसमें सुधार करता है। जिससे यह निश्चित हो सके कि उपक्रम के उद्देश्यों एवं उनको प्राप्त करने के लिए निर्धारित योजनाओं को कार्यान्वित किया जा रहा है।'

उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह कह सकते हैं कि नियंत्रण से आशय इस बात का पता लगाना एवं यह देखने से है कि उपक्रम के समस्त कार्य निर्धारित उद्देश्यों, योजनाओं, नीतियों, कार्यक्रमों, दिये गये निर्देशों के अनुसार हो रहे है या नहीं। इसका उद्देश्य कार्य की त्रुटियों या विचलनों को प्रकाश में लाना, उसके कारणों एवं उत्तरदायी व्यक्तियों का पता लगाना है, ताकि यथासंभव उन्हें सुधारा जा सके एवं भविष्य में उनकी पुनरावृत्ति को रोजा जा सके। यह प्रबंध का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

नियंत्रण की प्रकृति

(1) नियंत्रण नियोजन की भांति एक निरंतर जारी रहने वाली प्रक्रिया माना जाता है।
(2) नियंत्रण प्रबंध प्रक्रिया का अंतिम कार्य है।
(3) नियंत्रण संगठन के सभी स्तरों पर और सभी प्रकार के कार्यों पर लागू होने वाली प्रक्रिया है।
(4) नियंत्रण आगे देखने वाला कार्य है।
(5) नियंत्रण व्यक्तियों से संबंध रखता है।
(6) नियंत्रण न तो अधीनस्थों के अधिकारों में कमी करना है और न ही हस्तक्षेप करना है। यह तो तथ्यों पर आधारित एक क्रिया है।
(7) नियंत्रण संस्था की योजनाओं के संदर्भ में होता है।
(8) नियंत्रण हमेशा भावी क्रियाओं पर होता है।
(9) नियंत्रण का गुरूत्तर दायित्व 'सूत्र अभिकरण' का होता है।
(10) नियंत्रण का प्रबंधकीय कार्य 'नकारात्मक' सा प्रतीत होता है। जबकि यह एक सुधारात्मक उपाय है।
(11) नियंत्रण तथा दण्ड का सह-संबंध होता है।

प्रभावी नियंत्रण व्यवस्था के आवश्यक तत्व

1. **मितव्ययी**- नियंत्रण व्यवस्था मितव्ययी होनी चाहिए। वह इतनी मितव्ययी तो अवश्य हो कि अपने ऊपर किये जाने वाले व्ययों से अधिक लाभ प्रदान कर सके।
2. **लचीलापन**- नियंत्रण व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन हो सके। प्रमाप सदा एक से नहीं रहते हैं। कई बार यांत्रिक नियंत्रण विधियां उपयोगी होती है और कई बार मनुष्यों के द्वारा अच्छा नियंत्रण हो सकता है। यह एक परिवर्तनशील प्रक्रिया है।
3. **विचलनों या त्रुटियों को शीघ्र प्रकट करने वाली प्रक्रिया**- नियंत्रण का प्रमुख उद्देश्य विचलनों को ज्ञात करना तथा उनके कारणों का पता लगाकर उन्हें समाप्त करना होता है। अत: वह नियंत्रण व्यवस्था प्रभावी होती है। जिससे विचलनों को शीघ्रतिशीघ्र ज्ञात किया जा सके ताकि प्रबंधक इस संबंध में आवश्यक कार्यवाही कर सके।
4. **स्पष्टता**- एक अच्छी नियंत्रण व्यवस्था सरल एवं स्प्ष्ट होनी चाहिए।
5. **संगठन संरचना के अनुरूप**- नियंत्रण व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो कि संगठन संरचना के अनुरूप हो। इस दृष्टि से नियंत्रण व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि विचलनों के लिए किसी निश्चित व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सके।

6. **उपयुक्तता**- नियंत्रण व्यवस्था कार्यों के लिए उपयुक्त होनी चाहिए। उदाहरणार्थ, उत्पादन विभाग में काम आने वाली नियंत्रण व्यवस्था विक्रय विभाग से भिन्न होगी। इसी प्रकार संगठन के प्रत्येक स्तर में भी नियंत्रण की विधियां अलग-अलग होगी। अत: नियंत्रण के साधनों की उपयुक्तता को ध्यान में रखा जाना अति आवश्यक है।
7. **सुधारात्मक कार्य करना**- एक अच्छी नियंत्रण व्यवस्था केवल विचलनों एवं कारणों को ही ज्ञात नहीं करती है, बल्कि उनके सुधार का कार्य भी करती है। अत: नियंत्रण व्यवस्था में भी यह स्पष्ट करना चाहिए कि विचलनों के दोषी कौन है, ये विचलन कहां तथा क्यों हुए हैं तथा इनके सुधारों के लिए क्या प्रयत्न किये जा सकते है।
8. **प्रक्रिया निर्धारण में हिस्सेदारी**- नियंत्रण प्रक्रिया के निर्धारण में उच्च प्रबंधकों एवं अधीनस्थों दोनों का पर्याप्त हाथ होना चाहिए।
9. **सरलता**- नियंत्रण व्यवस्था एवं विधि सरल होनी चाहिए। नियंत्रण की विधि की जानकारी संगठन में सभी लोगों को होनी चाहिए।
10. **दूरदर्शिता**- एक प्रभावशाली नियंत्रण व्यवस्था दूरदर्शिता पर आधारित होती है। अगर उपक्रम की नियंत्रणता प्रभावशाली है तो हानियों एवं अपव्ययों की जानकारी भी तुरंत हो जाती है।
11. **निरंतरता**- नियंत्रण व्यवस्था में निरंतरता का गुण भी होना चाहिए। नियंत्रण का कार्य समय विशेष पर ही नहीं किया जाना चाहिए।
12. **पर्याप्त अधिकार**- प्रभावशाली नियंत्रण व्यवस्था का एक प्रमुख लक्षण यह होता है कि प्रबंधकों को अपने अधीनस्थों की प्रक्रियाओं पर नियंत्रण करने के लिए पर्याप्त अधिकार दिये जाने चाहिए। जिससे वे समय पर ही सुधारात्मक कार्यवाही कर सकें।
13. **उचित समय पर ही नियंत्रण**- प्रभावशाली नियंत्रण तब ही संभव होता है जब उपक्रम की विभिन्न क्रियाओं पर उचित समय पर ही नियंत्रण की कार्यवाही प्रारंभ की जायें। समय निकल जाने के पश्चात् नियंत्रण की कार्यवाही प्रारंभ करने से ही नियंत्रण प्रभावशाली नहीं हो पाता है।
14. **अपवाद का सिद्धांत**- एक प्रभावी नियंत्रण व्यवस्था में अपवाद के सिद्धांत का पालन किया जाता है।
15. **प्रतिमान शुद्ध उपयुक्त एवं उद्देश्यात्मक**- नियंत्रण व्यवस्था की दृष्टि से स्थापित किये गये प्रतिमान शुद्ध, उपर्युक्त एवं उद्देशात्मक होने चाहिए।

नियंत्रण प्रक्रिया के आवश्यक कदम

1. **लक्ष्यों एवं प्रमापों का निर्धारण करना**- नियंत्रण प्रक्रिया का प्रथम आवश्यक कदम लक्ष्यों, प्रमापों, नीतियों, योजनाओं, मान्यताओं अथवा अन्य किसी माप का निर्धारण करना है, जिसके द्वारा किसी भी कर्मचारी के व्यवहार को नियमित किया जा सके। ये माप वे साधन होते है, जिनसे वास्तविक कार्यों की तुलना की जा सकती है। ये प्रमाप स्पष्ट रूप में निर्धारित किये जाने चाहिए। तथा सबके समझने योग्य तथा सबको स्वीकार्य होने चाहिए। जहां तक हो सके प्रमापों को गणितात्मक रूप में प्रकट कर दिया जाना चाहिए क्योंकि गणितात्मक प्रमापों से तुलना करना अधिक सरल होता है। ये प्रमाप व लक्ष्य यथार्थता के नजदीक होने चाहिए।
2. **निष्पादन का मूल्यांकन करना**- नियंत्रण प्रक्रिया का द्वितीय कदम वास्तविक कार्यों की प्रमापों से तुलना करना है। वास्तविक कार्यों की प्रमाप से तुलना करने का प्रमुख ध्येय वास्तविक कार्यो का प्रमाप विचलन की मात्रा को ज्ञात करना होता है। वास्तविक कार्यों का ज्ञान संस्था द्वारा एकत्रित की गई विभिन्न सूचनाओं के आधार पर किया जा सकता है।
3. **विचलन के कारणों को ज्ञात करना**- नियंत्रण कार्य में विहित अगला आवश्यक कदम प्रमाप एवं वास्तविक कार्यों के मध्य होने वाले अंतर के कारणों को ज्ञात करना है। इसमें यह ज्ञात करने की चेष्टा की जाती है कि जो अंतर हुआ है उस अंतर के पीछे क्या कारण है? योजना बनाने में कार्य गलती हुई है? योजना के क्रियान्वयन में इस तथ्य को ज्ञात किया जाता है। इस प्रकार जो कार्य प्रमाप के अनुसार न हो अथवा जो कार्य बिगड़े हुए हो, उनके कारणों की खोज इस स्तर पर की जाती है। कारणों को ज्ञात करना अत्यंत ही जरूरी है, ताकि असमान कार्य को ठीक करने का प्रयास किया जा सके।
4. **सुधारात्मक कार्यवाही करना**- यह नियंत्रण व्यवस्था का अंतिम चरण है। एक सिद्धांत है कि सर्वोत्तम को भी सुधारा जा सकता है। यदि त्रुटि का पता लगा जायें, हो उसके कारणों को जाना चाहिए और तुरंत सुधार के प्रयास किये जाने चाहिए। सुधारात्मक कार्यवाही के बिना नियंत्रण शून्यवत है और इसकी कोई उपादेयता नहीं है। इस प्रकार नियंत्रण के इस चरण में विचलनों या त्रुटियों के कारणों का पता लगाकर उन्हें दूर करने का प्रयास किया जाता है।

नियंत्रण की तकनीकें

1. **अवलोकन द्वारा नियंत्रण**- निम्नस्तरीय प्रबंधक कर्मचारियों के कार्यों का अवलोकन करके उन पर नियंत्रण स्थापित कर सकते है। थियो हैमन ने इस संबंध में लिखा है कि 'व्यक्तिकत अवलोकन करने में समय लगता है। थियो हैमन ने इस संबंध में लिखा है कि 'व्यक्तिगत अवलोकन करने में समय लगता है और ऊपरी तौर से यह एक अकुशल पद्धति दिखलयी देती है, किंतु अधीनस्थों की क्रियाओं के नियंत्रण की कोई अन्य विधि इसके स्थान पर प्रयुक्त नहीं की जा सकती है।
2. **अभिप्रेरण द्वारा नियंत्रण**- कर्मचारियों को अभिप्रेरित करके भी उनके प्रयासों को नियंत्रित किया जा सकता है।

3. **बजट नियंत्रण**- बजट नियंत्रण का अभिप्राय बजट द्वारा नियंत्रण स्थापित करने से है। संगठन की आय तथा व्यय पर नियंत्रण रखने के लिए बजट एक प्रभावशाली तरीका है। इसके द्वारा साधनों के कुशल उपयोग को संभव बनाया जाता है तथा आय और व्यय में संतुलन भी बजट नियंत्रण के द्वारा होता है।
4. **अंकेक्षण द्वारा नियंत्रण**- अंकेक्षण द्वारा गबन, धोखाधड़ी या हिसाब-किताब की गड़बड़ का पता चलता है। अंकेक्षण दो तरह का हो सकता है- आंतरिक अंकेक्षण एवं बाह्य अंकेक्षण। आंतरिक अंकेक्षण उच्चधिकारियों द्वारा किया जाता है। इसी प्रकार बाहरी अंकेक्षकों द्वारा अंकेक्षण किया जाता है तो यह बाह्य अंकेक्षण कहलाता है।
5. **अनुशासनात्मक कार्यवाही**- यह सकारात्मक नियंत्रण की विधि है, जो कर्मचारियों की त्रुटियों पर दण्ड की व्यवस्था करती है, जिससे कि भविष्य में कर्मचारी उन त्रुटियों की पुनरावृत्ति नहीं करें।
6. **सामग्री नियंत्रण**- सामग्री नियंत्रण वह तकनीक है, जिसके माध्यम से कच्चे माल आदि की पूर्ति को आवश्यकतानुसार बनाये रखा जाता है। सामग्री न तो अधिक ही रखी जानी चाहिए और न कम ही। दोनों ही दशाओं में नुकसान होता है।
7. **सम-विच्छेद विश्लेषण**- यह भी प्रबंधकीय नियंत्रण की एक मुख्य विधि है। इसके माध्यम से लाभ, विक्रय तथा सुरक्षा सीमा का निर्धारण किया जा सकता है। सम-विच्छेद बिंदु यह बतलाता है कि कुल लागत को पूरा करने के लिए किसी वस्तुत विशेष की कुल कितनी मात्रा बेची जानी चाहिए यदि इस निश्चित मात्रा से अधिक विक्रय होता है तो उस संस्था को लाभ होता है। अत: इस चार्ट से संस्था के उत्पादन एवं विक्रय क्रियाओं पर नियंत्रण स्थापित करना सरल होता है।
8. **अपवाद द्वारा नियंत्रण**- यह नियंत्रण की एक महत्वूपर्ण विधि है, जिसे उच्च स्तरीय एवं मध्यमस्तरीय प्रबंधकों के अमूल्य समय को बचाने हेतु काम में लिया जाता है। इस तकनीक के अंतर्गत केवल उन्हीं बातों की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है, जो कि योजनानुसार नहीं हो रहा है अर्थात् यह विधि केवल अपवादजनक स्थिति में ही प्रबंधकों का ध्यान आकर्षित करने पर बल देती है।
9. **अभिलेख तथा प्रतिवेदन**- अभिलेखों एवं प्रतिवेदनों को भी परिणामों के माप के रूप में व नियंत्रण की विधि के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। लेकिन इनका प्रयोग तब ही संभव हो सकता है जबकि वे सरल हो। यदि ये अभिलेख व प्रतिवेदन जटिल है तो नियंत्रण के लिए इन्हें काम में लाना अधिक उपर्युक्त नहीं रहता है।
10. **तदर्थ निर्णयों के द्वारा**- अनेक बार योजना के निर्माण के समय भावी समस्याओं की जानकारी नहीं हो पाती है। ऐसी स्थिति में उन समस्याओं के उदय होने पर ही प्रबंधक तदर्थ निर्णय लेकर नियंत्रण प्रणाली को बनाये रख सकते हैं। लेकिन ऐसे लिये जाने वाले निर्णय संस्था के हित में होने चाहिए।
11. **स्थायी सीमाओं का निर्धारण**- नियंत्रण की इस तकनीक में अधीनस्थों के अधिकार क्षेत्र को सीमित किया जाता है। वह अधीनस्थ अपनी इन निर्धारित सीमाओं में रहकर ही कार्य को सम्पन्न करता है। यदि सीमाओं के बाहर कार्य है, तो उच्च अधिकारियों को उनसे अवगत कराता है।

नियंत्रण की सीमाएँ

नियंत्रण की प्रमुख सीमाएं निम्नलिखित है-

1. **आंतरिक क्रियाओं पर ही नियंत्रण सम्भव, बाहरी क्रियाओं पर नही**- नियंत्रण की प्रमुख सीमा यह है नियंत्रण केवल आंतरिक क्रियाओं पर ही स्थापित किया जा सकता है। बाहरी क्रियाओं पर नियंत्रण स्थापित करना प्रशासकों की क्षमता के बाहर होता है।
2. **सभी स्थितियों में प्रमापों का निर्धारण सम्भव नहीं है**- नियंत्रण का कार्य तब ही प्रभावी एवं सफल सिद्ध हो सकता है, जबकि उपयुक्त एवं शुद्ध प्रमाप निर्धारित किये गये हो। लेकिन प्रशासन में अनेक ऐसी स्थितियां होती है, जिनमें सही प्रमाप निर्धारित करना संभव नहीं होता है।
3. **अत्यधिक व्यय**- कई बार प्रमाप तथा कार्यों के मध्य अत्यधिक विचलन होता है तथा उनको मालूम करने के लिए बार-बार व्यय करना पड़ता है, उस दशा में अत्यधिक धनराशि व्यय करने के लिए संस्था अपने आपको असमर्थ पाती है, तब नियंत्रण कार्य कठिन हो जाता है।
4. **सुधारात्मक प्रयास संभव नहीं**- अनेक बार विचलन मालूम हो जाता हैं, कौन दोषी है, यह भी मालूम चल जाता है, किंतु संगठन संरचना ऐसी होती है, कि सुधारात्मक कार्यों को लागू करना संभव नहीं होता है।
5. **उत्तरदायित्व निर्धारण में कठिनाई**- नियंत्रण व्यवस्था सामूहिक कार्यों के निष्पादन की दशा में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के निर्धारण में कठिनाई का अनुभव करती है।
6. **विचलनों का ज्ञान कठिन**- कई बार विचलनों को ज्ञात करना भी कठिन हो जाता है। इसके लिए विशेषज्ञों की सेवाएं प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है जो कि एक खर्चीला कार्य होता है।

निर्णय लेना (Decision Making)

निर्णय का जिक्र अकसर ही किसी बात को लेकर अपने मन को तैयार करने की क्रिया के तौर पर या सोच-विचारकर किसी स्थिति या अवधारणा या फैसले पर पहुँचने को क्रिया के तौर पर होता है। एक सामान्य व्यक्ति को दैनिक पारिवारिक गतिविधियों से लेकर बड़े-बड़े सरकारी संगठनों तथा उद्योगों तक, सभी में प्रति क्षण कोई-न-काई 'निर्णय' होता रहता है। वस्तुत: निर्णय करना अथवा निर्णयन, मानव की स्वाभाविक आवश्यकता तथा विशेषता है। चूंकि हमारी अधिकांश दैनन्दिन गतिविधियाँ हमारे व्यवहार तथा परिवेश में इस प्रकार घुलमिल जाती है, कि हमें पता ही नहीं रहता है कि हमने कब निर्णय ले लिया। केवल जटिल तथा गंभीर प्रकृति के प्रकरणों में हम यह जानते है, कि कोई निर्णय लिया जा रहा है या लेना है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आयु, लिंग, वंश, परिवार, पद, भूमिका तथा दायित्वों इत्यादि के अनुरूप निर्णय लेता है, लेकिन निर्णयन की क्षमता सभी व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न होती है।

निर्णय लेना जितना सरल, दूसरों को प्रतीत होता हे, उससे कहीं अधिक जटिल तथा भारी निर्णयकर्त्ताओं को लगता है। इसलिए ही शायद कहा जाता है कि निर्णय करने की अपेक्षा तोप का सामना करना अधिक अच्छा समझते है। ऐसा इसलिए है कि अधिकांश अव्यक्तिगत तथा संगठनात्मक निर्णयों के संबंध में व्यापक प्रतिक्रियाएं होती है।

वास्तव मे निर्णय, कई विकल्पों में से किसी एक विकल्प का चुनाव करने का पर्याय है। लेकिन कौन-सा विकल्प तत्कालीन परिस्थितियों, भावी संभावनाओं, उपलब्ध संसाधनों तथा संगठन के लक्ष्यों के अनुरूप सर्वाधिक उपयुक्त है, इसका निर्णय करना भी सरल नहीं है। एक कुशल नेतृत्व, नियंत्रण, समन्वय तथा मनोबल वृद्धि से संबंधित कृत्य, नि:संदेह निर्णयन पर आधारित होते है। किसी एक निर्णय से सभी को प्रसन्न कर देने की कल्पना करना ही व्यर्थ है, क्योंकि विशुद्धता तथा सर्वस्वीकार्यता मानव समाज में संभव नहीं है। हाँ तुलनात्मक रूप से श्रेष्ठतर तथा व्यवहारिक निर्णय अवश्य लिए जा सकते है।

निर्णयन की विशेषतायें

यद्यपि निर्णयन का कार्य प्रत्येक व्यक्ति तथा स्थान पर सम्पादित होता है। तथापि यहाँ वर्णित विवरण में प्रशासनिक संगठनों में किए जाने वाले निर्णयों को ही सम्मिलित किया जा रहा है, जिनकी प्रमुख विशेषताएँ तथा लक्षण इस प्रकार है-

1. निर्णयन का कार्य, संगठन के प्रत्येक स्तर तथा प्रत्येक कार्मिक द्वारा किया जाता है। यह हो सकता है कि कोई गंभीर एवं उच्च प्रकृति के निर्णय करे तो कोई कार्मिक साधारण निर्णय करे। अधिसख्य निर्णय सहकारी प्रयासों के परिणाम होते है।
2. निर्णयन एक ऐसी प्रक्रिया है, जो निरतंर जारी रहती है। यद्यपि देखने में ऐसा लगता है कि निर्णयन अंतिम क्रिया है, तथापि साथ है कि निर्णय भविष्य के लिए विचार एवं आधार बनाते है।
3. प्रत्येक निर्णय किसी एक मुद्दे से संबंधित होता है। उस मुद्दे पर निर्णय हो जाने के पश्चात् दूसरा मुद्दा सामने आ जाता है, अत: निर्णयन का कार्य सतत् रूप से जारी रहता है।
4. कोई भी निर्णय हो, वह निर्णयकर्त्ता के ज्ञान, व्यवहार तथा संगठन की प्रकृति हो सर्वाधिक प्रभवित होता है। निर्णयन का मूल आधार विवेकशीलता है।
5. निर्णयन दो विकल्पों या कई संभावित विकल्पों में से किसी एक विकल्प का चयन किया जाता है।
6. प्रत्येक निर्णय में वचनबद्धता, दृढ़ता तथा स्पष्टता अथवा नकारात्मक दोनों प्रकार हो सकते है। अधिकांश निर्णय वास्तविकता से मिलते-जुलते है। निर्णय सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के हो सकते है।
7. निर्णय, मूल्यांकन तथा विश्लेषण पर आधारित होता है तथा निर्णय का भी मूल्याकन एवं विश्लेषण हो सकता है।
8. निर्णयन में 'समय' महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि समय अपने आप में एक संसाधन तथा प्रभावकारी कारक है।
9. संसाधन, मानसिकता, तात्कालिकता तथा संगठन के अन्य आयाम निर्णयन को व्यापक रूप से प्रभावित करते है।
10. प्रत्येक निर्णय किसी विशिष्ट समस्या या मुद्दे से संबंधित होता है। यह समस्या बारम्बार आने वाली या कभी कभार आने वाली हो सकती है। स्पष्ट है इसका निर्णयन भी प्रभावित होता है।

सामान्यत: निर्णयन का अर्थ किसी एक निष्कर्ष पर पहुँचना होता है।

निर्णयन के आधार तथा सिद्धांत Bases and principles of Decision Making

निर्णय करने में सहायता देने वाले तत्वों के संबंध में सभी एकमत नहीं दिख पड़ते। क्योंकि निर्णय लेने का कोई निश्चित आधार नहीं है। प्रत्येक निर्णय ऐसे आधार या मानदण्ड पर निर्भर करता है जो उस परिस्थिति विशेष में महत्वपूर्ण होता है। निर्णय तक पहुँचने के साधन विवेकपूर्ण, भावनात्मक, विमर्शीय, आवेगशील या अभ्यासयुक्त हो सकते है। प्रज्ञा, तथ्य, अनुभव तथा सत्ता ऐसे सामान्य आधार है जो निर्णय तक पहुँचने में प्रयोग किये जाते हैं।

संगठनात्मक स्तर पर लिए जाने वाले निर्णय, केवल व्यक्तिगत मान्यताओं तथ क्षमता पर ही आधारित नही होते हैं बल्कि निर्णयों के संबंध में कतिपय ऐसे सुस्थापित सिद्धांत (Principles) तथा आधार बने हुए हैं, जो निर्णय-प्रक्रिया में या तो ध्यान में रखे जाते हैं अथवा उन्हें ध्यान में रखा जाना चाहिए।

1. **उद्देश्य:** प्रत्येक निर्णय, किसी-न-किसी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति के लिए लिया जाता है। यह उद्देश्य, संबधित संस्था या संगठन के मूलभूत लक्ष्यों के विपरीत नहीं होना चाहिए। निरूद्देश्य निर्णयों की संभावना बहुत कम होती है, फिर भी निर्णयन के समय उद्देश्य की स्पष्टता तथा वस्तुनिष्ठता को ध्यान में रखना चाहिए।
2. **वैधानिकता:** प्रशासनिक संगठनों का प्रमुख आधार कानून होता है, अत: कोई भी निर्णय लेने से पूर्व यह देखना अत्यावश्यक है कि वह निर्णय निर्धारित कानून तथा नियमों की सीमाओं का उल्लंघन न करे। निर्णयकर्ता के पास उस निर्णय की सत्ता या वैधानिक सक्षमता होनी अनिवार्य है।
3. **उचित समय:** निर्णयन में 'समय' तत्व' बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि कतिपय निर्णय तात्कालिक प्रकृति के होते हैं तो कुछ निर्णय दूरगामी परिणामों के आधार पर अधिक सोच-समझकर लिए जाते हैं। यद्यपि निर्णयों में देरी करना संगठन के हित में नहीं है

तथापि जल्दबाजी में लिए गए निर्णय भी घ्यातक सिद्ध हो सकते हैं। अतः निर्णय करते समय मामले की गंभीरता, तात्कालिकता, संगठन के संसाधनों की स्थिति तथा समय-सीमा को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

4. **तार्किकता:** संगठन में जो भी निर्णय लिये जाते है, उसे औचित्पूर्ण होना चाहिए, क्योंकि इसी से निर्णयन की वैज्ञानिक प्रकृति सिद्ध हो सकती है। बिना किसी तार्किक आधार से लिए गये निर्णय न तो क्रियान्वयन करने वालों के गले उतर सकते है और न ही निर्णयकर्ता स्वयं उससे संतुष्टि अनुभव कर सकता है। तार्किककता या बुद्धिमतापूर्ण निर्णयों में व्यक्तिगत इच्छाएँ, भावनाएँ, मूल्य तथा अभिमत के स्थान पर तथ्यों तथा तटस्थता का समावेश अधिक रहता है। अतः इस प्रकार के निर्णय स्वीकार्य होते हैं।
5. **पूर्णता:** प्रशासनिक अधिकारी अथवा अन्य कोई कार्मिक जब निर्णय ले तो उसे चाहिए कि वह उस निर्णय से संबंधित सभी घटकों, तत्वों तथा आयामों पर स्पष्ट रूप से विचार कर ले। आधे-अधूरे या अस्पष्ट निर्णय किसी उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक नहीं हो सकते हैं। निर्णयों की पूर्णता तथा स्पष्टता से उनका क्रियान्वयन कार्य सरल हो जाता है।
6. **सामाजिक-राजनीतिक तथा आर्थिक कारक:** जन प्रशासन से सबद्ध अथवा निजी क्षेत्र, दोनों के ही संगठनों को एक विशेष पारिस्थितिकी में कार्य करना पड़ता हे। जो संगठन अपने आस-पास के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक संदर्भों के विपरीत व्यवहार करता है अथवा कोई निर्णय ऐसा लिया गया हो, जो इन बाह्य कारकों की विपरीत प्रकृति का हो तो निस्संदेह वह निर्णय एक अच्छा निर्णय नहीं कहला सकता है।
7. **प्रतिक्रियाओं का पूर्वानुमान:** संगठन में चाहे किसी भी स्तर पर तथा किसी भी व्यक्ति द्वारा निर्णय लिया जाए, उस निर्णय पर अन्य व्यक्तियों की प्रतिक्रियों अवश्य होती है क्योंकि सगठनात्मक निर्णयों की प्रकृति 'सामूहिकता' को प्रभावित करती है। एक अच्छे निर्णय में उन प्रतिक्रियाओं का पूर्वानुमान लगा लेना चाहिए जो सम्भावित रूप से निर्णयन के पश्चात् सामने आ सकती हैं। इस पूर्वानुमान के द्वारा प्रतिक्रियाओं का उत्तर देना तो सरल हो ही जाता है, साथ में निर्णयन के समय, श्रेष्ठ विकल्प का चयन भी आसान हो जाता है।
8. **व्यवहारिकता:** निर्णय ऐसा होना चाहिए जिसे व्यावहारिक रूप में लागू किया जा सके, अर्थात् संगठन में उपलब्ध संसाधनों, नियमों, प्रक्रियाओं तथा सामाजिक, आर्थिक-राजनीतिक परिवेश में वह निर्णय क्रियान्वित हो सकता हौ। संगठन में कर्यरत मानव संसाधन तथा उसके कार्य व्यवहार को भी निर्णयन में ध्यान रखा जाना चाहिए। दूसरी ओर निर्णय की स्वीकार्यता भी महत्वपूर्ण पक्ष है अर्थात् जिन लोगों के लिए निर्णय लिया गया है तथा जिन लोगों के द्वारा निर्णय क्रियान्वित किया जाना है, उन्हें निर्णय स्वीकार होना चाहिए।
9. **गतिशीलता:** परिवर्तन एक आवश्यक तथा स्वाभाविक प्रक्रिया है, अतः संगठन के आंतरिक तथा बाह्य वातावरण तथा संरचना में आने वाले परिवर्तनों या सुधारों के अनुरूप निर्णयन भी गतिशीलता से युक्त होना चाहिए। पूर्व में लिए गए निर्णय, निस्संदेह आज के निर्णयों के लिए आधार बनते हैं, किन्तु यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि संगठन के उद्देश्य, कार्यकरण, संस्कृति, कार्मिक संघों, सेवा-शर्तों, उपभोक्ताओं, तकनीक तथा संसाधनों के संबंध में बदलने पर निर्णयन भी बदलना उपयुक्त रहता है।
10. **अधिकतम लाभ:** कोई भी निर्णय क्यों न हो, उसका प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव संगठन की आर्थिक स्थिति पर अवश्य पड़ता है। अतः निर्णय लेते समय मिव्ययता तथा अधिकतम लाभ को ध्यान में रखना चाहिए, क्योंकि 'वित्त' आधुनिक प्रशासनिक तंत्र का प्राण बन चुका हे। कम लागत में अधिक उत्पादन तथा अच्छी गुणवत्ता की वस्तुएँ या सेवाएँ देने वाला निर्णय ही संगठन के हित में होता है।
11. **स्वहित (संगठन) पर बल:** प्रशासनिक संगठनों में लिए जाने वाले निर्णयों में संगठन के मूल लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को केन्द्र बिन्दु मानना चाहिए। संगठन के हितों की रक्षा करने वाले निर्णय न केवल उपयोगी सिद्ध होते हैं बल्कि इससे निर्णयकर्ता को भी संतुष्टि मिलती है। व्यक्तिगत रूप से व्यक्ति कई प्रकार की प्रेरणाओं तथा लालसाओं से अभिभूत होकर निर्णय लेता है, किन्तु संगठनात्मक या प्रशासनिक मानव को संगठन के हितों के साथ अपने हितों का सामंजस्य बैठा कर निर्णय लेना चाहिए।
12. **सीमाओं का ज्ञान:** किसी भी प्रशासनिक संगठन के पास उपलब्ध संसाधनों की एक निश्चित सीमा होती है, अतः निर्णय लेते समय यह ध्यान रहना चाहिए कि संगठन के पास संसाधनों की उपलब्धता कितनी है। साथ ही उस निर्णय को क्रियान्वित करने या उस निर्णय से प्रभावित होने वाले दोनों ही संतुष्ट हो जाएँ, यह भी सहज नहीं है। अतः यह स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिए कि निर्णय अपने आप मे सम्पूर्ण , विशुद्ध तथा सर्वस्वीकार्य नहीं हो सकता है क्योंकि निर्णय करने वाले व्यक्ति, संगठन, विधि तथा परिस्थितियाँ बहुत-सी सीमाओ से आबद्ध हैं।

निर्णयन के अवसर

निर्णयन के लिए प्रतिक्षण कोई-न-कोई अवसर आता रहता है तथा व्यक्ति उसी के अनुरूप निर्णय भी करता रहता है, लेकिन संगठनात्मक स्तर पर निर्णय के अवसरों को इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है-

1. **पर्यवेक्षकों से आदेश मिलने पर**- निर्णयन के अधिकांश अवसर वरिष्ठ अधिकारियों से आदेश, निर्देश तथा सूचना प्राप्त होने पर उत्पन्न होते हैं। उच्चाधिकारियों से प्राप्त ओदश तथा निर्देशों की व्याख्या करने, वितरण करने तथा क्रियान्विति के लिए अधीनस्थ भी निर्णय लेते हैं। इस प्रकार के निर्णय के अवसर समाप्त नही किए जा सकते हैं बल्कि उत्तरदायित्वों के प्रत्यायोजन के द्वारा उन्हें एक सीमा तक कम किया जा सकता है।
2. **अधीनस्थों द्वारा निर्णय न लेने पर**- प्रशासनिक संगठनों में कई बार अधीनस्थ स्वयं निर्णय नही ले पाते हैं या उच्च स्तरीय सत्ता से निर्गमित आदेशों से वे अनिश्चय की स्थिति में आ जाते हैं या विचित्र प्रकृति की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं अथवा क्षेत्राधिकार या आदेशों में अतिराव तथा अर्न्तविरोध इत्यादि उत्पन्न हो जाता है तो उच्चाधिकारियों को निर्णय लेने पड़ते हैं। कतिपय परिस्थितियाँ या क्षेत्रधिकार ऐसे भी होते हैं जिनमें निर्णय किसी विशिष्ट व्यक्ति को ही लेना पड़ता है।
3. **संबंधित अधिकारी की स्वप्रेरणा से**- बहुधा संगठन में कार्यरत कार्मिक अपनी स्वप्रेरण या पहल के द्वारा भी निर्णय लेते हैं। में स्वप्रेरणा से किसी स्थिति विशेष में निर्णय लेने की क्षमता, उसकी कुशलता से अधिक महत्वपूर्ण है। इस प्रकार के प्रयास पहल शक्ति तथा सृजनशीलता को प्रमाणित करने के सर्वोत्तम अवसर होते हैं।

निर्णयों का प्रकार (Types of Decision)

सामान्यत: निर्णयों को दो श्रेणी यथा कार्यक्रमिक (Programmed) तथा अकार्यक्रमिक (Non-Programmed) निर्णयों में विभक्त किया जाता है-

1. **कार्यक्रमिक निर्णय (Programmed Decision):** कार्यक्रमिक या दैनन्दिन निर्णय वे होते हैं जो दिन-प्रतिदिन के कार्यों से संबंधित होते हैं तथा जिनकी एक प्रक्रिया पहले से ही निश्चित होती है। नैत्यिक तथा पुनरावृत्ति प्रकृति के निर्णय सरल प्रतीत होते है, क्योंकि इनकी एक निश्चित तथा सुव्यवस्थित प्रणाली निर्धारित रहती है। प्रशासनिक संगठनों में कार्मिकों को वेतन देना, अवकाश स्वीकृत करना तथा रिपोर्ट भेजना इत्यादि कार्यक्रमिक निर्णय है। उदाहरण स्वरूप, कर्मचारी के पदोन्नति से संबंधित समस्या का हल है कि उन सारे कर्मचारियों को पदोन्नति नीति के द्वारा होता है तथा प्रबंधकों को सिर्फ यह निर्णय करना होता है कौन कर्मचारी इन मानकों को पूरा करते है तथ इसके अनुसार निर्णय किया जाता हैं। कार्यक्रमिक निर्णय तुलनात्मक रूप में आसान है, संगठन के आन्तरिक कारकों की तुलना में। इस तरह के निर्णय संगठन के नीचे स्तर के लोगों द्वारा लिये जाते हैं जहाँ का वातावरण निर्णयन पर असर डालता है जो स्थिर तथा निश्चित आकार का होता है।
2. **अकार्यक्रमिक निर्णय (Non Programmed Decision):** अकार्यक्रमिक निर्णय वे होते हैं, जो किसी परिस्थिति विशेष के कारण एक नई समस्या के रूप में सामने आते है तथा जिनका पूर्वानुमान नही रहता है। स्पष्ट है कार्यक्रमिक निर्णयों के लिए अधिक सृजनात्मक, धैर्य तथा विश्लेषण क्षमता की आवश्यकता होती है। इन अकार्यक्रमिक निर्णयों की निश्चित प्रक्रिया नहीं रहती है। संगठन के नये कार्य तथा योजना इस श्रेणी में सम्मिलित है। इस तरह के निर्णय में स्थिति एक निश्चित आकार में नहीं होती है तथा जो अनेक विकल्पों का परिणाम मिलता है उसे अग्रिम में व्यवस्थित नहीं कर सकते हैं। उदाहरण स्वरूप अगर कोई संगठन संवृद्धि के लिए कोई कदम उठाता है।, तो इसके लिए अनेक वैकल्पिक रास्ते होते हैं जैसे जमीनी स्तर के प्रोजेक्ट या वर्तमान में किसी कार्यरत कम्पनी को अपने में मिला लेना। प्रत्येक परिस्थिति में प्रबंधक को प्रत्येक विकल्प के निष्कर्ष का विश्लेषण करने के पश्चात् एक निर्णय पर पहुँचता है। विकल्पों के परिणाम के विश्लेषण के लिए मैनेजर विभिन्न कारकों पर विचार करते हैं, जिसमें अनेक संगठन के बाहर अवस्थित होते हैं। चूँकि इन निर्णयों का काफी महत्व होता है क्योंकि इनका परिणाम दीर्धावधि तक होता है। इसलिए ऐसे निर्णय उच्च स्तर के मैनेजरों द्वारा लिया जाता है।

कार्यक्रमिक और अकार्यक्रमिक निर्णय की विशेषताएँ संक्षेप में

विशेषता	कार्यक्रमिक निर्णय	अकार्यक्रमिक निर्णय
संरचना का स्तर	सुव्यवस्थित संरचना	सेमी और अव्यवस्थित संरचना
बारंबारता	दैन्दिन तथा पुनरावृति	नया तथा असमान्य
परिणाम	छोटा	बड़ा
समाधान का समय	कम	सापेक्षिक ज्यादा
समाधान का आधार	निर्णय का नियम, निश्चित प्रक्रिया	न्याय तथ रचनात्मक
संगठनात्मक स्तर	निम्न स्तर	उच्च स्तर
सूचना आवश्यक	हर जगह मिलना, ज्यादातर आन्तरिक	अनेक विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त करना, ज्यादातर बाहरी

3. **व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक निर्णय:** व्यक्तिगत निर्णय वे होते हैं, जो कोई अधिकारी अपनी व्यक्तिगत स्थिति में लेता है तथ इन निर्णयों में किसी का हस्तेक्षेप नहीं रहता हे। ऐसे निर्णयों का अधिकार प्रत्योजित नहीं किया जा सकता है। संगठनात्मक निर्णय वे जो अधिकारी द्वारा अपनी पदस्थिति के कारण लिए जाते हैं तथा इन निर्णयों के अधिकार का प्रत्यायोजन भी किया जा सकता हैं।
4. **नियोजित एवं अनियोजित निर्णय:** नियोजित निर्णय वे हैं, जो तथ्यों पर आधिारित होते हैं तथा इनमें प्राय: वैज्ञानिक रीति का प्रयोग किया जाता हे जबकि अनियोजित निर्णय अवसर आने पर लिए जाते हैं। इन निर्णयों की प्रक्रिया सरल नही रहती है और न ही ये संस्था के उद्देश्यों को पूरा कर सकते हैं, क्योंकि अनियोजित निर्णय उलझन तथा समन्वय की कमी को बताते हैं।
5. **नीति, प्रशासनिक तथा कार्यकारी निर्णय:** प्रशासन में ये तीन प्रकार के निर्णय होते हैं। संगठन के उच्च स्तर पर लिए जाने वाले निर्णय, वित्तीय व्यवस्था, विपणन, संरचना तथा सामान्य उद्देश्य से संबधित निर्णय, नीतिगत निर्णय होते हैं। शासन सचिवालय या लोक उपक्रमों तथा निजी उद्यमों में संचालन मण्डल या प्रबंध मण्डल इसी प्रकार के निर्णय लेते हैं। संगठन के मध्य स्तर पर प्रशासनिक निर्णय लिये जाते हैं जो नीति संबंधी निर्णयों के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु आवश्यक है। जबकि कार्य को मूर्त रूप देने के लिए निम्न स्तर पर लिए जाने वाले निर्णय कार्यकारी निर्णय कहलाते हैं। नीति संबंधी निर्णय, सामान्य उद्देश्य एवं कार्यवधि को निर्धारित करते हैं प्रशासनिक निर्णय उन साधनों को निर्धारित करते हैं, निका प्रयोग किया जाता है जिनका कार्यकारी निर्णय वे हैं जो दिन प्रतिदिन अवसर एवं परिस्थिति के अनुसार लिए जाते हैं।
6. **एकांकी एवं सामूहिक निर्णय:** प्रशासन में एक व्यक्ति या अधिकारी द्वारा लिया गया निर्णय एकांकी (Individual) निर्णय कहलाता है। जबकि एकाधिक व्यक्तियों या समूह द्वारा लिए गए निर्णय सामूहिक निर्णय कहलाते हैं। आधुनिक सहभागी प्रबंध तथा विशेषीकरण के युग में सामूहिक निर्णयों की संख्या बढ़ रही है। समूह द्वारा लिए गए निर्णय एक व्यक्ति द्वारा लिए गए निर्णय से बेहतर होते हैं।
7. **सामान्य एवं विशिष्ट निर्णय:** पीटर एफ, डूकर को पुस्तक "The Practice of Management" के अनुसार संगठन में दो प्रकार के निर्णय लिये जाते हैं। सामान्य (Generic or Tactful) निर्णयों की प्रकृति व्यापक तथा दैनन्दिन प्रकृति की होती है, जबकि विशिष्ट (Unique or strategic) निर्णय सीमित, तात्कालिक तथा गंभीर मंथन की प्रकृति से जुड़े हुए माने जाते है।

8. **रणनीतिक निर्णय:** रणनीतिक निर्णय की अवधारणा रणनीति पर आधारित होती है जो कि किसी संगठन की बड़ी कार्य योजना होती है। अतएव रणनीतिक निर्णय को निम्न तरह से परिभाषित किया जा सकता है:-
   (i) निर्णय एक मुख्य तत्व होता है जो कि पूरे संगठन के बड़े भाग को प्रभावित करता है।
   (ii) संगठन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सीधे तौर पर भाग लेता है। वैसे सारे निर्णयों की कोशिश इस दिशा में योगदान देना होता है, रणनीतिक निर्णयों का योदगान सीधा होता है तथा अन्य निर्णय इससे निकाला जाता है।
   (iii) रणनीतिक निर्णय पहले के निर्णयों से अलग या दूर होता है जो कि संगठन के चलन से संबधित रहता है। उदाहरण स्वरूप उत्पाद के मिश्रण में बदलाव, से इत्यादि।
   (iv) रणनीतिक निर्णय के सामान्यतया निम्न तत्व होते हैं-
      (क) कार्य योजना या कार्य प्रारूप जो कि निर्देशित होता है परिणाम को प्राप्त करने के लिए जो कि क्रिया तत्व के रूप में जाना जाताहै।
      (ख) एक अपेक्षित परिणाम या उद्देश्य प्राप्त करने के लिए निर्णय को लागू के तरफ सीधे निर्देश करता है कार्य प्रारूप को करने के लिए तथा जो लोग इसमें सम्मिलित होते है, उत्तरदायी होते है लक्ष्य को प्राप्त करने तथा जो संसाधन उन्हें मुहैया कराया गया है- वायदा तत्व है।
   (v) रणनीतिक निर्णय सामान्यतया एक अकार्यक्रमिक निर्णय हैं जिसका निर्माण कुछ अनेदखी स्थिति के तहत होता है। जो विकल्प सम्मिलित होते हैं तथा इन विकल्पों का परिणाम हम पहले से नहीं जान पाते। यह ऐसा इसलिए होता है क्योंकि रणनीतिक निर्णय को पर्यावरण कारकों के परिप्रेक्ष्य में लिया जाता है जो कि काफी गतिज तथा अनिश्चित होता है।
9. **व्यवहारिक निर्णय (Tractical Decision):** व्यवहारिक या कार्यकारिक निर्णय को रणनीतिक निर्णय से ही प्राप्त किया गया है। यह संगठन के प्रतिदिन के कार्य से संबंधित है तथा इसका निर्माण एक ठीक तय नीतियों तथा प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में होता है। व्यवहारिक निर्णय के निम्न विशेषताएँ हैं-
   (i) यह संगठन के प्रतिदिन के कार्यों से संबंधित होता है तथ ये बिना रोक-टोक लिया जाता है। निर्णय मुख्यतया पुनरावृत्ति होती है, उदाहरण स्वरूप कच्चे माल का खरीद, कर्मचारियों को कार्य सौपना इत्यादि।
   (ii) व्यवहारिक निर्णय का नतीजा कम अवधि के प्रकृति का होता है तथा संगठन के एक संकरे भाग पर प्रभाव डालता है। उदाहरण स्वरूप कच्चे माल का खरीद एक रोजमर्रा का कार्य हे जो कि उत्पादन विभाग पर एक कम समय के लिए प्रभाव डालेगा क्योंकि कच्चे माल बेधड़क खरीदे जाते हैं एक तय नियम के संदर्भ में।
   (iii) व्यावहारिक निर्णय के प्राधिकार नीचे स्तर के मैनेजर को सौंपा जा सकता है। ऐसे करने के निम्न कारण है- पहला व्यवहारिक निर्णय का प्रभाव संकरा एक कम अवधि के लिए होता है। अतएव नीचे स्तर के प्रबंधक को ऐसे निर्णय के लिए प्रभावी परिदृश्य उपलब्ध होता है। दूसरे ऐसे निर्णय के लिए निम्न स्तर के प्रबंधक को प्रतिनिधि प्राधिकृत कर दिया जाता है तथा ऊँचे स्तर के मैनेजर रणनीतिक निर्णय पर अधिक समय देने के लिए स्वतंत्र होते हैं।

निर्णयन की शैलियाँ (Styles of Decision-making)

प्रत्येक व्यक्ति अपनी आयु, शिक्षा, लिंग, संस्कृति, अनुभव तथा तकनीकी क्षमताओं इत्यादि के आधार पर निर्णय लेता है, लेकिन प्रशासनिक संगठनों में प्रबंधकों या प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा लिए जाने वलो निर्णय अन्य कई कारकों से भी प्रभावित होते हैं। संगठनात्मक निर्णयन के संबंध में प्रचलित चार मुख्य शैलियाँ इस प्रकार हैं-

1. **निदेशात्मक शैली:** जिन व्यक्तियों या निर्णयकर्ताओं में अनेकार्थी (Ambiguity) शब्दों या प्रकरणों को अथवा उलझी हुई परिस्थितियों को सहने की क्षमता कम होती है। तथा जो तार्किकता को पसंद करते हैं, कम से कम सूचनाओं से निर्णय लेते हैं तथा कुछ ही विकल्पों का सहारा लेते हैं, वे निदेशात्मक शैली के निर्णयकर्ता होते हैं। इस प्रकार की शैली में तुरन्त निर्णय होते हैं तथा अल्पकालीन दृष्टि किन्तु कार्यकुशलता से संबद्ध निर्णय होते हैं।
2. **विश्लेषणात्मक शैली:** इस शैली में उलझी हुई परिस्थितियों को सहने की अधिक क्षमता होती है। निर्णय में अधिक सूचनाओं तथा अधिक विकल्पों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के निर्णयकर्ता सावधानी सें निर्णय लेने वाले होते हैं एवं नई चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होते हैं।
3. **अवधारणात्मक शैली:** इस शैली में निर्णयकर्ता अपनी सोच में व्यापक दृष्टि रखते हैं। कई विकल्पों का सहारा लेते हैं तथा इनका मुख्य ध्यान दूरगामी प्रभावों पर होता है। इस शैली में समस्याओं का सृजनात्मक हल ढूँढ़ना सरल होता है।
4. **व्यवहारात्मक शैली:** इस प्रकार की शैली में निर्णयकर्ता दूसरों के साथ कार्य करने में रूचि लेता है। व्यवहारात्मक (Behavioural) शैली में उच्चाधिकारियों तथा अधीनस्थों दोनों की उपलब्धियों तथा सुझावों सहित समूह-चर्चा का स्वागत किया जाता है। इस प्रकार के प्रबंधक या निर्णयकर्ता प्राय: संघर्ष को टालना चाहते हैं तथा सहमति को बढ़ावा देते हैं।

निर्णय लेने की प्रक्रिया (Decision-making Process)

1. **समस्या की जानकारी प्राप्त करना :-** किसी समस्या की व्यापक जानकारी प्राप्त करना ही निर्णय लेने की प्रक्रिया का प्रथम चरण होता है। जब तक हम किसी समस्या को गंभीरतापूर्वक समझेंगे नहीं, तब तक हम उचित निर्णय नहीं ले सकते । इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि समस्या के स्वभाव को समझकर ही कम कोई निर्णय ले सकते है।
2. **समस्या का विश्लेषण करना :-** समस्या की जानकारी होने के बाद उसके सभी तत्वों का विश्लेषण किया जाता है। समस्या का विश्लेषण करने के लिए हमें उसे विभिन्न भागों में बांट देना चाहिए।
3. **आवश्यक तथ्यों एवं सूचनाओं की खोज एवं संकलन :-** समस्या का विश्लेषण तभी किया जा सकता है जबकि उससे संबंधित आवश्यक तथ्यों एवं सूचनाओं को खोजकर उनका संकलन कर लिया जाये। समस्या से संबंधित जितने भी आंतरिक एवं बाहरी तथ्य

तथा सूचनाएँ हों उनको एकत्रित करना जरूरी रहता है क्योंकि, तभी समस्या पर गंभीरतापूर्वक चिंतन कर कोई निर्णय लिया जा सकता है।

4. **भिन्न वैकल्पिक रीतियों का विकास** :- किसी भी समस्या का समाधान अनेक तरीकों से किया जा सकता है। इन विकल्पों का निर्धारण करना आवश्यक होता है। इन विकल्पों का निर्धारण करना आवश्यक होता है। सरल शब्दों में यह भी कहा जा सकता हैं कि हमें केवल महत्वपूर्ण विकल्पों पर ही विचार करना चाहिए।
5. **विकल्पों का मूल्यांकन** :- हमें सबसे पहले विकल्पों को सीमित कर लेना चाहिए क्योंकि सभी विकल्पों पर विचार करना न तो संभव होता है और न ही व्यावहारिक। जब हमें महत्वपूर्ण विकल्पों की जानकारी हो जाती है, इसके बाद प्रत्येक विकल्प का मूल्यांकन किया जाता है।
6. **सर्वोत्तम विकल्प का चयन अर्थात् निर्णय पर पहुंचना** :- विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन करने तथा विशेषज्ञों की राय लेने के बाद सर्वोत्तम विकल्प का चयन किया जाता हैं। इस प्रकार सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव काफी सावधानीपूर्वक करना चाहिए।
7. **निर्णय का क्रियान्वयन** :- सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव करने के बाद अर्थात् निर्णय पर पहुंचने के बाद उस निर्णय को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करना भी आवश्यक होता है। निर्णय लेने मात्र से ही कोई समस्या हल नहीं होगी। जिस प्रकार निर्णय लेने में सावधानी रखी जाती है, उसी प्रकार उसे क्रियान्वित करने में भी सावधानी रखनी चाहिए।
8. **पुनरीक्षण एवं संशोधन** :- निर्णय को त्रुटि रहित बनाने के लिए यह जरूरी है कि समय-समय पर उसके परिणामों की समीक्षा की जाये। निर्णय को क्रियान्वित करने के बाद यदि कुछ गलतियाँ या दोष सामने आते हैं तो तुरंत ही उनका समाधान कर देना चाहिए।

निर्णयन-प्रक्रिया के चरण (Stages of Decision-making Process)

प्रशासन में निर्णयन एक दैनन्दिन गतिविधि तथा एक प्रक्रिया रूप में निरन्तर चलने वाला स्वाभाविक कार्य है। हरबर्ट साइमन ने निर्णय-प्रक्रिया के तीन चरण बताए हैं-

1. **आसूचना (बुद्धिमता) क्रिया (Intelligence Activity):** निर्णय प्रक्रिया का यह प्रथम चरण है। 'आसूचना' नामक शब्द सैन्य शब्दावली से लिया गया है। प्रथम चरण में समस्या का पता लगाया जाता है तथा आवश्यक सूचना, आँकड़े एवं तथ्य एकत्र किए जाते हैं अर्थात् इस चरण में निर्णय लेने के अवसरो तथा स्थितियों का पता लगाया जाता है।
2. **प्रारूप क्रिया (Design Activity):** इस द्वितीय चरण में विभिन्न विकल्पों तथा सम्भावित कार्यविधियों का विकास एवं विश्लेषण किया जाता है। यह चरण समस्या तथा उसके सम्भावित विकल्पों के आकलन एवं समाधान के संबंध में चिन्तन का है।
3. **विकल्प चयन क्रिया (Choice Activity):** निर्णयन का यह तीसरा तथा अन्तिम चरण ही 'निर्णय' है। इस चरण में समस्त उपलब्ध विकल्पों या कार्याविधियों में से किसी एक का चयन कर लिया जाता है जो सर्वोत्कृष्ट (निर्णयकर्ता की दृष्टि में) हो।

निर्णय प्रक्रिया:-

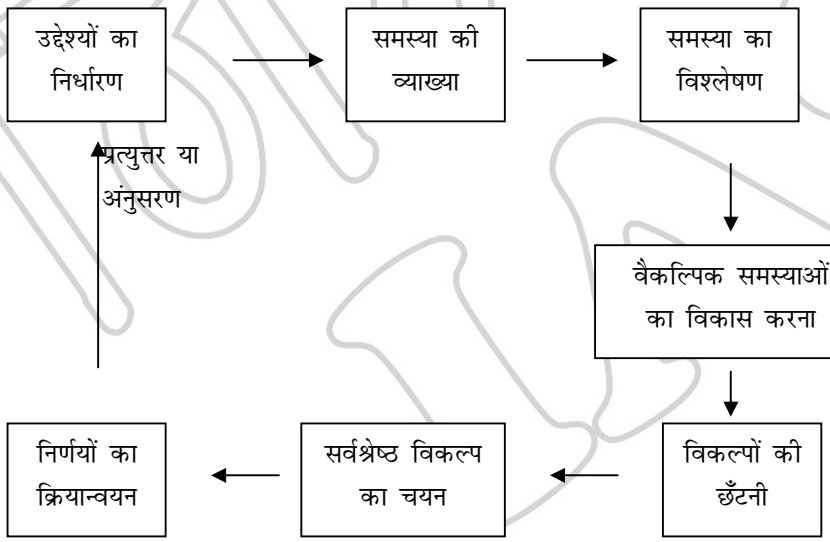

निर्णय लेने में बाधाएँ या कठिनाइयाँ

1. **उच्चाधिकारियों की उदासीनता** :- उच्चाधिकारी प्राय: निर्णय लेने में टालमटोल करते है।
2. **उपयोगिता-निर्धारण में कठिनाई** :- निर्णय की उपयोगिता के निर्धारण में कठिनाई के कारण निर्णय नहीं लिया जा पाता है।
3. **लक्ष्य की दूरी** :- निर्णय का संगठन के लक्ष्य से दूर होने की संभावना पर निर्णय लेना कठिन हो जाता है।
4. **काम में बाधा** :- निर्णय से अधीनस्थों के कार्यकरण पर बाधा होने की संभावना से निर्णय नहीं लिया जा पाता।
5. **क्षेत्र की सीमितता** :- निर्णय लेने के क्षेत्र का अति सीमित होना भी एक बाधा है।
6. **सीमित विकल्प** :- विकल्प अगर सीमित हो तो निर्णय नहीं लिया जाता।
7. **स्वेच्छचारिता** :- निर्णय में उच्चाधिकारियों की स्वेच्छाचारिता भी बाधक होती है।
8. **सुझाव के प्रति उदासीनता** :- निर्णय में अधीनस्थों की प्रतिक्रिया या सुझाव पर ध्यान नहीं दिया जाता हैं।
9. **दबाव एवं प्रभाव** :- निर्णयकर्ता पर अनावश्यक दबाव।

10. **कार्यभार की अधिकता** :- प्रशासकों पर दैनिक कार्यों का भार रहता है जिससे भी उत्तम निर्णय नहीं ले पाते।
11. **विपरीत मूल्यों की समस्या** :- स्थापित एवं वर्तमान मूल्यों में विरोधाभास के कारण निर्णय लेना कठिन होता है।
12. **प्राथमिकता का निर्धारण** :- प्राय: समस्याओं में किसी एक की प्राथमिकता का निर्धारण कठिन होता है।
13. **औपचारिकता** :- औपचारिकता में प्रक्रिया में उलझना निर्णय लेने में कठिनाई उपस्थित करता है।
14. **पूर्वाग्रह** :- निर्णयकर्ता अगर किसी पूर्वाग्रह से प्रभावित हो तो वह सही निर्णय नहीं ले पाता।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट होता हैं कि निर्णय प्रबंध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य हैं, जिसे प्रतिक्षण एक सामान्य व्यक्ति से लेकर विशालतम संगठनों द्वारा लिया जाता है। निर्णय वास्तव में चुनने की प्रक्रिया है जिसमें अनेक विकल्पों में से सर्वोत्तम को चुनना होता हैं, और इस सर्वोत्तम विकल्प तक पहुंचने से पूर्व निर्णयकर्ता को अनेक तत्वों को ध्यान में रखना होता है एवं एक निश्चित प्रक्रिया से गुजरना होता हैं। साथ ही अनेक बाधाओं को भी पार करना होता है, और एक कुशल निर्णयकर्ता वह है, जो सभी पक्षों का उचित मूल्यांकन करते हुए निर्णय के मार्ग में आने वाली समस्याओं का समुचित समाधान खोजे और संगठन के हित में सर्वोत्तम निर्णय की खोज करें। अत: निर्णयन अतिमहत्वपूर्ण है इसलिए साइमन निर्णय को प्रबंध का हृदय कहते हैं।

निर्णयन की तकनीक (Techniques of Decision-making)

वस्तुत: किसी भी संगठन में निर्णय-प्रक्रिया की सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक स्थिति न तो एक जैसी रहती है और न ही सभी व्यक्ति निर्णयन में किसी एक निश्चित विधि या पद्धति का प्रयोग करते हैं। एक संगठन में ताा एक ही व्यक्ति द्वारा भिन्न-भिन्न अवसरों पर अलग-अलग तकनीक, निर्णयन में काम ली जाती हैं। निर्णयन से संबंधित निम्न तकनीक है-

1. **विवेकशीलता (Judgement) तकनीक**- विवेकशीलता से आशय उस बौद्धिक क्षमता से है, जिसमें हम अच्छे, संवेदनात्मक तथा तार्किक निर्णय बुद्धि के द्वारा लेते हैं। चाहे हम निर्णय धार में लें या प्रशासनिक संगठन में लें, विवेकशीलता अर्थात् नीर-झीर निर्णयन की क्षमता हर जगह आवश्यक है। इस तकनीक का प्रयोग सर्वाधिक व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। क्योंकि यह व्यक्ति की स्वयं की क्षमता है। स्पष्ट है इस तकनीक से कम लागत पर शीघ्र निर्णय हो सकते हैं, लेकिन कमी यह है कि प्रत्येक व्यक्ति में समान विवेक नहीं हो सकते हैं, तथा बहुधाा व्यक्तिगत मान्यता पर आधारित संगठनात्मक निर्णय घातक भी सिद्ध हो सकते हैं। हबर्ट साइमन मानते हैं कि कार्यक्रमिक निर्णय आदत, ज्ञान, कौशल तथा अनौपचारिक माध्यम के द्वारा लिए जा सकते हैं।
2. **प्रबंध-सिद्धांतों की तकनीक**- संगठन तथा प्रबंध के कुशल संचालन के लिए बनाए गए सिद्धांतों या नियमों को आधार बनाकर भी निर्णय किए जा सकते हैं। हेनरी फेयोल, एफ. डब्ल्यू. टेलर, लूथर गुलिक, हरबर्ट साइमन, एल, उरविक, चेस्टर बर्नार्ड तथा डब्ल्यू. एफ विलोबी इत्यादि द्वारा वर्णित प्रशासनिक सिद्धांत (Administrative Principles), जैसे- आदेश की एकता, प्रत्यायोजन, संचार, समन्वय, नियंत्रण का क्षेत्र, पदसोपान तथा सत्ता एवं उत्तरदायित्व इत्यादि का सहारा लेकर निर्णय किया जा सकता है। प्रबंध या प्रशासन के सिद्धांत स्वयं निर्णय नही है बल्कि वे संगठनात्मक निर्णयन में सहायता अवश्य कर सकते हैं। हुचिन्सन के शब्दों में- "यद्यपि प्रबंध के सिद्धांत निर्णयन के रूप में कोई विशेष महत्व नहीं रखते हैं तथापि ये निर्णयन के 'वातावरण के निर्धारण' में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है"
3. **प्रतिमान (Model) निर्माण तकनीक**- प्रतिमान या प्रतिरूप से तात्पर्य उस वस्तु या विचार से हे, जो एक उदाहरण या आदर्श के रूप में किसी के कार्य एवं योजना को प्रभावित करता है। उत्पादन, निर्माण तथा संचालन के लिए कई बार किसी वस्तु या उद्यम या संरचना का एक संभावित प्रतिमान बना लिया जाता है। इस प्रतिमान या प्रतिकृति से वास्तवकिता का मिलान करके भी निर्णय किए जाते हैं। प्रतिमान भौतिक तथा वैचारिक दोनों प्रकार का हो सकता है। आधुनिक प्रबंध के क्षेत्र में प्रतिमान तकनीक बहुत लोकप्रिय तथा व्यावहारिक सिद्ध हुई है।
4. **व्यवहारात्मक तकनीक (Behavioural Technique)**- संगठन की मानव-संबंध तथा व्यवहारवादी विचारधारा सहित लोकतांत्रिक परम्पराओं ने इस तकनीक को बढ़ावा दिया है। समूह-चर्चा, बैठक, सुझाव-आमंत्रण तथा सहभागी प्रबंधन को व्यवहारात्मक तकनीक के उपकरण मान सकते हैं। व्यवहारात्मक निर्णयन तकनीक चाहे आधुनिक हों या परम्परागत, सभी में निर्णयकर्ता के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति या समूह की 'सहभागिता' अवश्य रहती है। जापान में अधिकांश निर्णय सहभागिता पर आधारित होते हैं।
5. **आर्थिक एवं वित्तीय तकनीक (Economical & Financial Techniques)**- सामान्य आर्थिक सिद्धांतों तथा सीमान्त विश्लेषण से यह सिद्ध हो चुका है कि इनका निर्णयन में महत्वपूर्ण स्थान है। वित्तीय तकनीकों में पूर्ण लाभ, विनियोजित पूँजी या ब्याज दर, विनियोजित वसूली इत्यादि को आधार बना कर निर्णय किए जाते है। मूल्यांकन तथा विश्लेषण का मूल आधार प्रदान करते हैं, क्योंकि आधुनिक प्रशासनिक संगठनों का प्राणतत्त्व 'वित्त' ही है, अत: वित्तीय संसाधनों के सदुपयोग तथा अधिकतम कुशलता के लिए 'शून्य आधारीय बजट' तथा 'निष्पादन बजट' इत्यादि तकनीकों को प्रयोग किया जा रहा है। बजट की यह नई तकनीक या स्वरूप, निग्रयन को प्रभावित करने में सक्षम है।
6. **सांख्यिकीय तकनीक**- आँकड़े, तथ्य ता सूचनाओं का आधुनिक संगठनों में बहुत महत्व है, क्योंकि नियोजन, नियंत्रण (प्रबोधन) तथा मूल्यांकन के समंकों की अनिवार्यता सर्वविदित है। गणितीय एवं सांख्यिकी परिमाणात्मक विधियों जैसे-सम्भाव्यता (Probability) की अवधारणा इत्यादि निर्णयन के लिए मार्गदर्शक तकनीक सिद्ध होती हैं। साइमन ने माना है कि अकार्यक्रमिक निर्णय गणितीय तथा कम्प्यूटरीकृत विधियों से ही लिए जा सकते हैं।
7. **विशिष्ट निर्णयन तकनीक**- कम्प्यूटर, संचार-साधन तथा प्रबंध एवं नियोजन की आधुनिक तकनीक, जैसे- पर्ट एवं सी.पी. एम इत्यादि विधियों ने निर्णयन को नये आधार प्रदान किए हैं। परिचालन अनुसंधान (Operations Research), क्रीड़ा सिद्धांत (Game Theory), कम्प्यूटर सिमुलेशन तथा रेखीय कार्यक्रमण (Linerar Programming) इत्यादि तकनीक एवं अवधारणाओं के आधार पर आजकल बहुत से तकनीकी एवं जटिल निर्णय कराए जा सकते हैं।

निर्णयन के प्रतिमान (Models of Decision-Making)

निर्णयन के संबंध में मानव व्यवहार तथा संगठनात्मक परिस्थियों को आधार बनाकर दो प्रकार के प्रतिमान या प्रारूप प्रचलित हैं-

(i) आर्थिक मानव प्रतिमान या पूर्ण विवेकशीलता प्रतिमान

(ii) प्रशासनिक मानव या सीमित विवेकशीलता प्रतिमान

तीसरा प्रतिमान सामाजिक मानव प्रतिमान है। वस्तुत: **हरबर्ट साइमन** ने पूर्ण औचित्य या विवेकशीलता पर आधारित प्रतिमान को आर्थिक मानव प्रतिमान नाम दिया है, जिसमें व्यक्ति को आर्थिक मानव के रूप में विवेकी माना गया है। दूसरे छोर पर मनोविज्ञान से लिया गया सामाजिक मानव प्रतिमान है, जो मनोविज्ञानी सिगमण्ड फ्रायड की इस मान्यता का पोषक है कि व्यक्ति की अपनी भावनाएँ, इच्छाएँ, मूल्य तथा विचार होते हैं, अत: वह तर्क या विवेक से प्रभावित न होकर केवल इच्छा प्रधान निर्णय लेता है। आर्थिक मानव तथा सामाजिक मानव के बीच वाले व्यवहार को साइमन ने प्रशासनिक मानव या सीमित विवेकशीलता (Bounded Rationality) नाम दिया है।

आर्थिक मानव प्रतिमान (Economic Man Theory/Model) : यह प्रतिमान (वस्तुत: सिद्धांत) दो मान्यताओं पर आधारित है-

1. मनुष्य, आर्थिक रूप से विवेकशील होता है।
2. मनुष्य, क्रमबद्ध तरीके से लाभ या उपयोगिता की प्रप्ति के अधिकाधिक प्रयास करता है।

यह विचार मूलत: कार्ल मार्क्स के उन विचारों से प्रेरित है जिनमें उन्होंने 'अर्थ' को समस्त क्रियाओं का मूल माना है। टेलर भी इसी मान्यता के समर्थक है।

आर्थिक मानव या पूर्ण विवेकशीलता प्रतिमान में निर्णय के निम्न चरण होते है-

1. समस्या या प्रकरण के उद्देश्य या लक्ष्य जानना या समस्या की पहचान करना।
2. समस्या को परिभाषित करना या जो लक्ष्य प्राप्त करना है उसे निश्चित करना।
3. वैकल्पिक साधनों के मूल्यांकन के लिए प्रमाण विकसित करना।
4. समस्त वैकल्पिक कार्यविधियों (Course of Action) को खोजना।
5. प्रत्येक विकल्प के सम्भावित परिणामो पर विचार करना।
6. प्रत्येक विकल्प के परिणामों को समग्र रूप से जानकर श्रेष्ठ विकल्प चुनना।
7. निर्णय को क्रियान्वित करना।

प्रशासनिक मानव या सीमित विवेकशीलता प्रतिमान (Administrative Man or Bounded Rationality Model)

यह प्रतिमान मध्यमार्गी है जिसमें व्यक्ति न तो पूर्ण तार्किकता और न ही पूर्ण भावुकता के आधार पर निर्णय लेता है। साइमन के अनुसार जहाँ आर्थिक मानव अधिकतम लाभ के लिए सर्वश्रेष्ठ विकल्प को निर्णय के रूप में चुनता है, वही प्रशासनिक मानव ऐसे निर्णय को तलाशता है, जो सनतोषजनक या ठीक-ठाक हो। ऐसे निर्णय व्यक्ति की नजर में 'पर्याप्त रूप से अच्छे' होते हैं, अत: वह सन्तुष्टिदायक विकल्प चुन लेता है। ऐसा इसलिए होता है कि व्यक्ति क्षमता से अधिक सूचना तथा तथ्यों की आवश्यकता होने के कारण सर्वोत्तम विकल्प तक पहुँचने से पहले ही किसी निम्न स्तर पर निर्णय ले लेता है, अर्थात् सीमित विवेकशीलता का प्रयोग किया जाता है-

1. प्रशासनिक मानव (व्यक्ति) विभिन्न विकल्पों का चयन करते समय केवल सन्तोषजनक या ठीक-ठाक या 'पर्याप्त लाभ' इत्यादि मापदण्ड संतुष्टिदायक हैं।
2. प्रशासनिक मानव यह मानकर चलता है कि वास्तविक संसार लगभग रिक्त (विकल्पों से विहीन) है, अत: सरलीकरण के द्वारा संतुष्टि पा लेता है।
3. अधिकतम के बजाय संतोषजनक का चयन प्रशासनिक मानव की विशेषता है, अत: वह सम्भावित विकल्पों का निर्धारण किए बिना ही, संतुष्टिदायक विकल्प चुन लेता है।
4. चूँकि प्रशासनिक मानव संसार को रिक्त मानता है, अत: वह अपने सामान्य ज्ञान, अँगूठन-नियम या व्यापार के दाँव-पेचों के अनुरूप निर्णय ले लेता है।

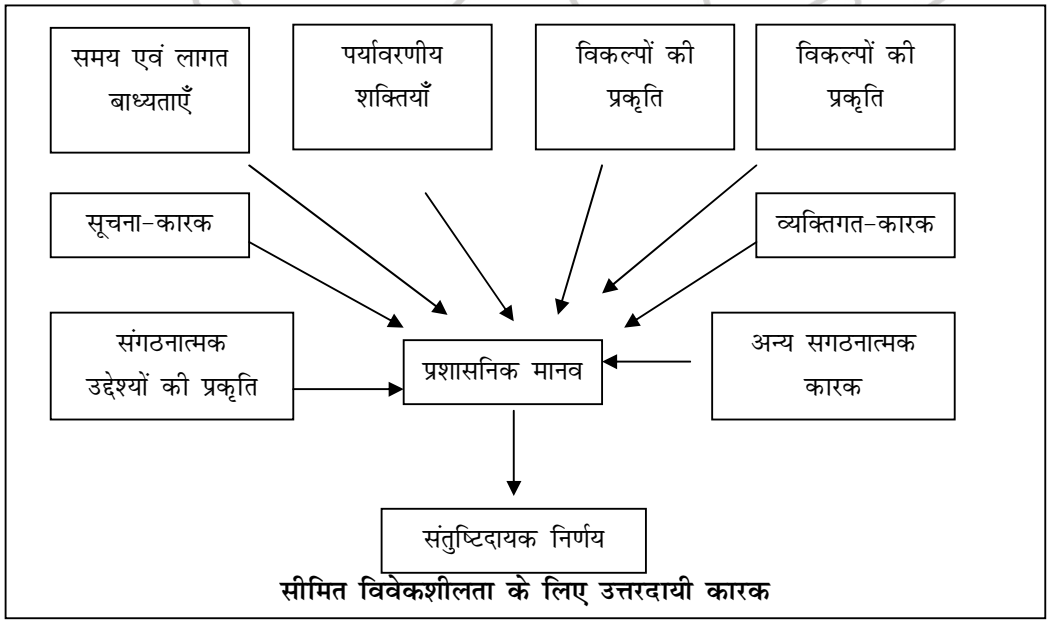

सीमित विवेकशीलता के लिए उत्तरदायी कारक

प्रशासनिक मानव प्रतिमान में निर्णयन के निम्न चरण होते हैं-

1. लक्ष्य निर्धारित करना या समस्या को परिभाषित करना।
2. अभिलाषा का उपयुक्त स्तर निर्धारित करना।
3. एक एकल आशाजनक विकल्प की सूक्ष्म समस्या क्षेत्र अन्वेषण विधि का उपयोग करना।

यदि कोई व्यवहारिक विकल्प नहीं मिल सके तो-

4. अभिलाषा के स्तर को नीचे की ओर ले जाना।
5. एक नये वैकल्पिक समाधान की खोज करना।
6. व्यवहारिक विकल्प की खोज के पश्चात् इसकी स्वीकार्यता निश्चित करने के लिए मूल्यांकन करना।
7. यदि चयनित विकल्प स्वीकार करने योग्य नहीं है तो नये विकल्प को खोजना
8. यदि खोजा गया विकल्प स्वीकार करने योग्य है तो समाधान को क्रियान्वित

निर्णय निर्माण और साइमन

साइमन का सर्वोत्कृष्ट शैक्षिक योगदान निर्णयन से ही संबंधित है। The New Science of Management Decision में साइमन ने प्रबंधन को निर्णयन के समानार्थी माना है। साइमन ने एक बार अपने एक शिष्य से कहा था- ''मैं एक सनकी (Monomaniac) इंसान हूँ तथा मेरी सनक केवल 'निर्णयन' के इर्द-गिर्द रहती है।'' अत: साइमन ने निर्णय प्रक्रिया पर अपना विशेष ध्यान केन्द्रित किया है। अपनी पुस्तक 'एडमिनिस्ट्रेटिव बिहैवियर' में साइमन ने स्पष्ट किया है कि प्रत्येक निर्णय तथ्यों एवं मूल्यों का संयोजन होता है। तथ्य से तात्पर्य यह है कि कोई वस्तु क्या हैं क्या थी या क्या रही है। क्या, तथ्यों संबंधी विवरण की पुष्टि करता है। मूल्य से तात्पर्य पसंदगी से है। साइमन का मानना है कि इस प्रकार का निर्णयकर्ता को पर्याप्त संतोष देता है। साइमन निर्णयकर्ता के इस व्यवहार को ''सीमित तार्किक व्यवहार'' की संज्ञा देते हैं और साथ ही पूर्ण तार्किकता की अवधारणा को नकारते है। वह निर्णय निर्माण को प्रशासन या प्रबंध के समकक्ष बताते हैं। साइमन का मानना हैं कि प्रत्येक निर्णय प्रक्रिया तीन अवस्थाओं से गुजरती है।

1. अन्वेषण क्रिया
2. डिजाइन क्रिया
3. चयन क्रिया

निर्णयन प्रक्रिया का प्रथम चरण **अन्वेषण क्रिया** कहलाता है। इसे आवश्यक मूल्यांकन भी कहा जाता है। समस्या को पहचानने तथा समझने के लिए यह आश्यकता है कि किस समस्या पर निर्णय लेना है उसे अनुसंधानात्मक दृष्टि से देखा जाये। इस अवस्था में उत्पन्न समस्या के क्षेत्र, स्तर और प्रकृति को पहचाना एवं समझा जाता है। फिर उस समस्या के पूर्व इतिहास को देखा जाता है, क्योंकि प्राय: समस्याएँ ऐसी होती हैं जो अपने पूर्व निर्णयों या निष्कर्ष में जन्म लेती है। उनका इतिहास उनसे संबंधित स्थितियों के पूर्व अनुभव तथा स्थिति के निरतंर विकास एवं बदलती हुई स्थिति को समझने में सहायता करता हैं। साथ ही उस समस्या से उत्पन्न स्थिति का अवलोकन किया जाना चाहिए। यह समस्या को सही रूप से सामने लाने एवं समझने में सहायक होता है।

निर्णय प्रक्रिया के दूसरे चरण को **डिजाइन क्रिया** कहा जाता हैं। इसे तथ्यों की खोज एवं खोज की कसौटी कहा जा सकता है। इसके तहत तथ्यों को सुसंगतिपूर्ण ढंग से समस्या के वातावरण से चुना जाता है और तथ्यों का मूल्यांकन किया जाता हैं। इस प्रकार चुनी गयी समस्या के लिए भी संभावित विकल्पों का निर्माण किया जाता है। तृतीय चरण में विभिन्न विकल्पों में से एक विकल्प का चयन किया जाता है। निर्णयकर्ता विकल्पों का इस प्रकार श्रेणीयन करते हैं कि सर्वोत्तम विकल्प उसकी उपयोगिता एवं आवश्यकतानुसार चुना जा सके। एक सर्वोत्तम विकल्प का चयन करने के लिए निम्नलिखित कार्य अपेक्षित हैं-

1. अधिकतम लाभों और कम दोषों वाले विकल्प का चयन करना चाहिए।
2. विकल्प दीर्घकाल तक प्रभावी रहने वाला होना चाहिए।
3. विकल्प चयन करते समय संस्था के उपलब्ध साधनों को भी दृष्टिगत करना चाहिए।
4. विकल्प ऐसा होना चाहिए जो न्यूनतम प्रयासों पर अधिकतम लाभों की उपलब्धि करा सके।

उपरोक्त क्रियाओं की प्रकृति का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि निर्णयन से संबंधित सभी कार्यों के लिए विचार, चिंतन एवं मनन की आवश्यकता होती हैं। इसलिए निर्णयन को एक बौद्धिक प्रक्रिया के रूप में साईमन ने मान्यता दी है।

साइमन ने निर्णयन के प्रक्रिया तत्व को समय से संबद्ध किया हैं अर्थात् भूतकालीन क्रिया-समस्या विकास, सूचना एकत्रीकरण आदि भावी वर्तमान क्रिया-विकल्पों का विकास तथा विकल्प का चयन तथा भावी क्रिया-क्रियान्वयन, अनवर्तन तथा मूल्यांकन।

निर्णय के प्रकार :-साइमन के अनुसार निर्णयन दो प्रकार के होते हैं-

1. **कार्यात्मक निर्णय** :- कार्यात्मक निर्णय वे हैं जो स्वरूप में दुहराए जाने वाले तथा आम होते हैं। ऐसे निर्णयों के लिए निश्चित प्रक्रिया बनायी जा सकती है।
2. **अकार्यात्मक निर्णय** :- अकार्यात्मक निर्णय नये तथा अनबद्ध होते हैं। जिन पर कोई पहले से तैयार पद्धतियाँ उपलब्ध नहीं होती तथा प्रत्येक प्रश्न या मसले पर अलग से विचार करना होता हैं।

निर्णयन की आवश्यकता :- साइमन के अनुसार निर्णय लेने की आवश्यकता उस समय उत्पन्न होती हैं, जबकि व्यक्ति के पास किसी कार्य को करने के लिए बहुत से विकल्प होते हैं, परन्तु व्यक्ति को छंटनी की प्रक्रिया के माध्यम से केवल एक ही विकल्प का चुनाव करना होता है।

तथ्य एवं मूल्य :- साइमन के अनुसार निर्णय से अभिप्राय 'तथ्यों' एवं 'मूल्य' (Facts and Values) तत्वों का उचित योग होता है। तथ्य से अभिप्राय है कि कोई वस्तु क्या हैं, क्या भी अथवा क्या रही हैं। तथ्य सच्चाई की अभिव्यक्ति है। इसके विपरीत, मूल्य से तात्पर्य पसंदगी से हैं। मूल्य वरीयता की अभिव्यक्ति होती हैं, इसलिए यह तथ्य पर आधारित नहीं होती ।

उनके अनुसार प्रत्येक निर्णय अनेक तथ्यों और एक या अनेक मूल्य वक्ताव्यों का परिणाम होता हैं। विकल्प या निर्णय में तथ्य तथा मूल्य दोनों शामिल होते हैं। ये किसी निर्णय में सम्मिलित नैतिक तथा तथ्यपरक तत्वों के विश्लेषण की कसौटियों को स्पष्ट करते हैं।

निर्णयन की तार्किकता :- साइमन के अनुसार निर्णयन तार्किक (विवेकशीलता) चयन पर आधारित होनी चाहिए। तार्किकता की परिभाषा देते हुए वह कहते हैं कि यह मूल्यों की किसी प्रणाली के संदर्भ में वरीयता प्राप्त व्यवहार विकल्पों का ऐसा संबंध हैं जिसके द्वारा व्यवहार के परिणामों का मूल्यांकन किया जा सके।

साइमन के लिए निर्णयन हैं- (1) उद्देश्यगत विवेकपूर्ण, (2) व्यक्तिनिष्ठ विवेकपूर्ण, (3) संज्ञान विवेकपूर्ण, (4) संगठनात्मक विवेकपूर्ण, (5) विमर्शगत विवेकपूर्ण (6) वैयक्तिक विवेकपूर्ण।

निर्णयन की सीमा :- साइमन के अनुसार संगठन को पूर्ण तार्किकता की अवधारणा के साथ नहीं चलना चाहिए, बल्कि उसे 'सीमित तार्किकता' अथवा मर्यादित तार्किकता' के आधार पर ही कार्य करना होता है। उसके अनुसार तार्किकता सीमित होने के निम्न कारण हैं- (1) ज्ञान की अपूर्णता, (2) पक्के पूर्वानुमान का अभाव, तत्संबंधी मनावैज्ञानिक कारण।

सन्तोषजनक निर्णय :- साइमन के अनुसार चूंकि सभी विकल्पों और उनके परिणामों को जानने की लोगों की योग्यता सीमित होती है। अत: पूर्णत: तर्कसंगत निर्णय सम्भव नहीं है। सीमित जानकारी अथवा ज्ञान के कारण लोग ऐसे विकल्प को चुन लेते हैं, जो बिल्कुल परिपूर्ण न होकर साधारणतया ठीक होते हैं। ऐसे निर्णयों को साइमन संतोषजनक निर्णय कहता हैं। साइमन लिखते है कि प्रशासक सदैव 'अनुकूलतम समाधानों' की खोज कर सकते हैं, किन्तु पर्याप्त रूप से ठीक समाधानों से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। विभिन्न प्रकार की सीमाओं के कारण प्रशासकों का व्यवहार 'उच्चतम' न होकर केवल सन्तोषप्रद ही हो जाता है।

निर्णय स्वीकृति के तरीके :- साइमन के अनुसार निर्णय तीन तरीके से स्वीकृत कराये जा सकते हैं-

1. शक्ति प्रयोग द्वारा,
2. भावनात्मक सहानुभूति और सम्मोहन द्वारा,
3. सहयोगियों में निर्णय के प्रति सम्मान, आदर और औचित्य का भाव जाग्रत करके।

प्रशासनिक मानव मॉडल :- साइमन ने शास्त्रीय विचार धारा के 'आर्थिक मानव मॉडल' तथा मानव संबंध वाद के 'सामाजिक मानव मॉडल' के स्थान पर 'प्रशासनिक मानव मॉडल' का प्रतिपादन किया। यह दोनों के बीच की अवस्था को दर्शाता है। प्रशासनिक मानव तथ्यों तथा मूल्यों के आधार पर निर्णय लेता है तथा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सीमाओं के कारण बुद्धि संगत निर्णय न लेकर एक संतुष्टि दायक निर्णय लेता है।

आलोचना :- साइमन के विचार पर्याप्त लोकप्रिय तथा गंभीर एवं जटिल प्रकृति के होते हुए भी आलोचनाओं के शिकार हुए, जो निम्नलिखित हैं-

1. साइमन के विचारों की आलोचना मुख्यत: इस रूप में होती है कि निर्णय की प्रक्रिया हालांकि संगठनात्मक परिस्थिति का महत्वपूर्ण परिवर्तनीय घटक है, परंतु संगठन की पूरी तस्वीर को समझ पाने के लिए वह अकेला ही पर्याप्त नहीं है।
2. साइमन के निर्णयन के सिद्धांत की आलोचना यह कह कर भी की गई है कि वह बहुत ही सामान्य है, क्योंकि यह संगठन-नियोजकों का मार्गदर्शन करने के विस्तृत जानकारी देने वाली कोई रूप-रेखा प्रस्तुत नहीं करता।
3. क्रिस आर्गिरिस मानते हैं कि साइमन ने अपनी तार्किकता की अवधारणा में अंत: प्रेरणा, परम्परा तथा विश्वास की भूमिका को नहीं पहचाना है। साइमन का सिद्धांत यथास्थिति पर ध्यान केन्द्रित करता हैं।
4. निर्णयन के संदर्भ में तथ्यों को प्राथमिकता देने तथा मूल्यों से बचने की सलाह देने वाले साइमन के विचार प्रशासन में मूल्यविहीन मापदण्डों की स्थापना करते है। जबकि नवीन प्रशासन की विचारधारा मूल्यों से परिपूर्ण व्यवस्था का समर्थन करती है।
5. साइमन ने एक ओर लोक-प्रशासन को विज्ञान बनाने कि बात की, वहीं दूसरी ओर मूल्यों पर भी बल दिया है। जो विरोधाभाषी है।
6. साइमन का संतुष्टिदायक का प्रशासनिक मानव प्रतिमान मनुष्य की उन्नति की राह में बाधा उत्पन्न करती है। यदि व्यक्ति थोड़े से ही संतुष्ट हो जाएगा तो वह भला अधिक का प्रयास क्यों करेगा?
7. साइमन का निर्णयन उपागम, नीति एवं प्रशासन या राजनीति एवं लोक प्रशासन में पुन: द्विविभाजन उत्पन्न करता हैं, जबकि आधुनिक विचारधाराएँ राजनीति एवं प्रशासन के एकीकरण पर बल देती है।
8. जेम्स अर्ल के शोध करके निष्कर्ष दिया है कि आज अधिकांश निजी उपक्रम, 'संतुष्टिदायक समाधान' नहीं, बल्कि, श्रेष्ठतम समाधान' की खोज में निरंतर व्यस्त रहते हैं। अत: साइमन का यह कहना सही नहं है कि श्रेष्ठतम निर्णय की खोज नहीं की जा सकती है।

उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद साइमन का निर्णय-निर्माण प्रतिमान अनुपयोगी सिद्ध नहीं होता और न ही साइमन का योगदान तथा महत्व कम होता है। वे एक विख्यात व्यवहारवादी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ-साथ आधुनिक तकनीकियों को इस्तेमाल करने वाले विचारक थे। उनकी विचारधारा का मूल निष्कर्ष यह है कि संगठन का अध्ययन करने के लिए व्यक्ति को निर्णयन प्रक्रियाओं की जटिल संरचना का अध्ययन करना चाहिए। उनके द्वारा अर्थशास्त्रीय सिद्धांत को समन्वित करके निर्णय करने के आधुनिक सिद्धांत की आधारशिला रखना कितना महत्वपूर्ण है, इस बात का पता इससे ही चलता है कि वे अर्थशास्त्री न होते हुए भी अर्थशास्त्र के नोबल पुरस्कार से सम्मानित किये गये। अत: साइमन का लोकप्रशासन के क्षेत्र में अमर योगदान है जो हमेशा इस क्षेत्र के विद्वानों का आदर्श और मार्गदर्शक बना रहेगा।